गुरुमत

(श्री आदि ग्रन्थ के अनुसार)

३. सच्ची भक्ति



लेखराज पुरी

राधास्वामी सत्संग ब्यास

गुरुमत

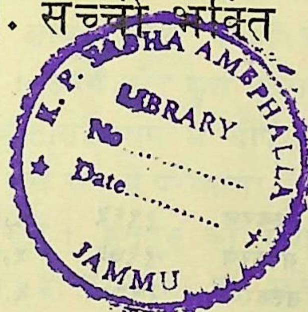




गुरुमत

(श्री आदि ग्रन्थ के अनुसार)

३. सच्ची भक्ति



लेखराज पुरी

राधास्वामी सत्संग, ब्यास

प्रकाशक :
एस० एल० सोंधी,
सैक्रेटरी
राधास्वामी सत्संग, ब्यास,
ज़िला अमृतसर, (पंजाब)।

प्रथम संस्करण	१९६५	५,०००
द्वितीय संस्करण	१९७५	५,०००
तृतीय संस्करण	१९७८	५,०००
चतुर्थ संस्करण	१९८३	५,०००

मुद्रक :
एपैक्स प्रिंटिंग प्रैस,
प्रताप रोड, जालन्धर।

प्रकाशक की ओर से

'गुरुमत' के दूसरे भाग में विद्वान् लेखक ने सतगुरु के व्यक्तित्व और महिमा का वर्णन किया था और बतलाया था कि सतगुरु, शब्द के साथ जुड़कर, परमपिता परमात्मा के साथ एक हो गये हैं। उनमें और कुल मालिक में कोई भेद नहीं है। 'गुरुमत' के तीसरे भाग में प्रोफेसर पुरी बतलाते हैं कि सतगुरु अपने मूल रूप में परमात्मा हैं और परमात्मा का देह-स्वरूप सतगुरु है। सतगुरु की सेवा परमात्मा की सेवा है, उनकी भक्ति ही परमात्मा की भक्ति है। सतगुरु के हुक्म में चलना, अपनी बुद्धि का आसरा छोड़कर उनकी मौज में रहना, बग़ैर फल की आशा या इच्छा के उनकी सेवा करना, दिन-रात उनकी याद में लीन रहना; उनके ध्यान में मग्न रहना और अपने अहंभाव को मिटाकर उनके चरणों के प्रेम में मस्त रहना ही उनकी सच्ची भक्ति है। आशा है इस पुस्तक से प्रेरणा पाकर जिज्ञासु सतगुरु की भक्ति रूपी अनमोल सम्पदा को पाने की कोशिश करेंगे और अपना मनुष्य-जन्म सार्थक करेंगे।

सैक्रेटरी

राधास्वामी सत्संग ब्यास

प्राक्कथन

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के आधार पर लिखित 'गुरुमत' ग्रन्थ-माला की यह तीसरी पुस्तक है।

इस ग्रन्थमाला के पहले भाग में हमने इस बात पर विचार किया था कि परमात्मा का वह कौन-सा सच्चा नाम है, जो कि हमें मुक्ति प्रदान करता है तथा परमात्मा के साथ हमारा मिलाप करता है। हमने पाया कि वह नाम, जिसका सन्तों-महात्माओं ने इतना गुणगान किया है, जिसका सुमिरन और अभ्यास करने के लिये गुरु ग्रन्थ साहिब में बार-बार ज़ोर दिया गया है, किसी भी भाषा का शब्द या लफ़्ज़ नहीं है। परमात्मा का यह सच्चा नाम एक बड़ी ऊँची रूहानी धुन है, दिव्य संगीत या अलौकिक राग है, जिसे हम इन कानों से सुन नहीं सकते, इस ज़बान से बोल नहीं सकते और न बुद्धि या किसी भी दूसरी ज्ञान-इन्द्रियों के द्वारा पहचान ही सकते हैं। केवल सुरत या आत्मा ही इससे सम्बन्ध जोड़ कर इसे पहचान सकती है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में परमात्मा के इस सच्चे नाम को अनेक प्रकार से पुकारा गया है, जैसे नाम, शब्द, धुन,

शब्द धुन, अनहद, अनहद शब्द, सत शब्द, सार शब्द, वाणी अनहद वाणी; गुरुवाणी, अकथ कथा, अजपा जाप, सच, हुक़्म आदि ।

इस नाम, हुकम या दिव्य संगीत के बारे में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का कथन है :

अखी बाझहु वेखणा विणु कंना सुनणा ।।
पैरा बाझहु चलणा विणु हथा करणा ।।
जीभै बाझहु बोलणा इउ जीवत मरणा ।।
नानक हुकमु पछाणि कै तउ खसमै मिलणा ।।

(माझ दी वार म. २, पृ. १३९)

(गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि बग़ैर आँखों के देख कर, बग़ैर कानों के सुन कर, बिना पैरों के चलकर, बग़ैर हाथों के काम करके और बिना ज़बान के बोल कर, इस प्रकार जीते जी मर कर परमात्मा के हुकम (सच्चे नाम) को पहचानकर हम उससे मिल सकते हैं ।)

परमात्मा का यह 'हुकम' सभी वस्तुओं को आकार और रूप देता है :

हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई ।।

(जपुजी, पृ. १)

(इसी हुकम से सारी रचना होतो है, लेकिन यह हुकम बोलने में नहीं आता ।)

यह हुकम ही नाम है जो कि सारी सृष्टि को आधार

दे रहा है :

नाम के धारे खंड ब्रहमंड ॥

(गउड़ी सुखमनी म. ५, पृ. २८४)

(नाम के सहारे ही सारे खण्ड-ब्रह्माण्ड खड़े हैं।)

यह नाम या शब्द ही सृष्टि की रचना तथा उसका अन्त करने वाली शक्ति है :

उतपति परलउ सबदे होवै ॥

(माझ म. ३, पृ. ११७)

(उत्पत्ति और प्रलय शब्द के द्वारा ही होते हैं।)

यह शब्द ही सब वस्तुओं को उनका आकार और रूप देता है :

नानक सबदु अपारु तिनि सभु किछु सारिआ ॥

(गउड़ी दी वार सलोक म. ५, पृ. ३२०)

(श्री गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि शब्द की कोई सीमा नहीं, शब्द ने ही सब वस्तुओं को रूप-रंग दिया है।)

यह शब्द या वाणी हमारे अन्दर सदा गूंजती रहती है :

घट अंतरे साची बाणी ॥

(सूही म. ३, पृ. ७६९)

यह वाणी अपनी मूल अवस्था में परमात्मा का ही रूप है और इसी प्रकार आतमा का मूल स्वरूप भी वाणी और परमात्मा ही है। जब आत्मा शब्द की ओर आती है, तो वह शब्द के द्वारा उसी प्रकार खींच ली जाती है जिस प्रकार

सूई को चुम्बक खींच लेता है। अन्त में, यह सर्वव्यापी, अलौकिक चेतन सत्ता-वाणी या नाम—हमें अपने असली घर सचखण्ड में ले जाती है और कुल मालिक, सत्पुरुष या निरंकार से हमारा मिलाप करा देती है।

इसके लिये हमें मौत या इस संसार को सदा के लिये छोड़ने के समय तक ठहरने की ज़रूरत नहीं। सभी धर्मों का विश्वास है कि मौत के बाद मुक्ति मिलती है। लेकिन यह केवल मान्यता या धार्मिक विश्वास ही है और हम यह नहीं कह सकते हैं कि यह कहाँ तक ठीक है और कौन-सा धर्म सच्चा है। पर इस दिव्य वाणी, शब्द या नाम के द्वारा हम मरने से पहले, अपने जीवन-काल में ही, मुक्ति तथा परमात्मा से मिलाप प्राप्त कर सकते हैं। यह नाम ही वह पदार्थ है, जिसे पाने के लिये हम इस संसार में आये हैं और अगर हम इसे पाने की पूरी कोशिश नहीं करेंगे तो यह मनुष्य-जन्म व्यर्थ चला जायेगा।

'गुरुमत' के दूसरे भाग में हमने इस बात पर विचार किया था कि इस दिव्य नाम को किस प्रकार पाया जा सकता है। हम इस नतीजे पर पहुँचे थे कि यह नाम रूपी ख़ज़ाना केवल सन्तों से ही मिल सकता है :

जिसु वखर कउ लैनि तू आइआ ॥
राम नामु संतन घरि पाइआ ॥
(गउड़ी सुखमनी म. ५, पृ. २८३)

(जिस सौदे के लिये तू (इस संसार में) आया है, वह परमात्मा का नाम है और केवल सन्तों से ही तू उसे पा सकता है।)

इस प्रकार, इस नाम को प्राप्त करने के लिये सन्त या सतगुरु की ज़रूरत है :

बिनु सतिगुर को नाउ न पाए
प्रभि ऐसी बणत बणाई हे ॥

(मारू म. ३, पृ. १०४६)

(बिना सतगुरु के कोई नाम नहीं पा सकता, प्रभु ने ऐसा ही विधान बनाया है।)

गुरु के बिना कौई भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता :

कहु नानक प्रभि इहै जनाई ॥
बिनु गुर मुकति न पाईऐ भाई ॥

(गौंड़ म. ५, पृ. ८६४)

(गुरु नानक साहिब कहते हैं कि प्रभु ने यही प्रकट किया है कि हे भाई, गुरु के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।)

इसलिये हमें एक पूर्ण गुरु की ज़रूरत है जो हमें नाम या अनहद शब्द प्रदान कर सके।

जिसने अपनी आत्मा को अनहद शब्द में लीन कर लिया है, वही सच्चा गुरु है :

सबद रता सतिगुरु है ॥

क्योंकि शब्द एक आध्यात्मिक चेतन सत्ता है, इसलिये वह ग्रन्थों-पोथियों में नहीं आ सकता और न उसे बोल-चाल के द्वारा दूसरों तक पहुँचाया जा सकता है। वह केवल एक पूर्ण चेतन तथा जाग्रत आत्मा (जो कि हमारे समान ही देह रूप में हो) के द्वारा ही हमारी आत्मा तक पहुँचाया जा सकता है। हम मनुष्य हैं और इसलिये हमें गुरु भी मनुष्य रूप में ही चाहिये। हमें अपने ही समय के ऐसे देहधारी सन्त की ज़रूरत है, जिसने स्वयं सत्य को पहचान लिया है और इसीलिये दूसरों को भी उसके साथ जोड़ सकता है :

सो गुरु करउ जि साचु दृढ़ावै ।।

(धनासरी म. १, पृ. ६८६)

(ऐसे पुरुष को गुरु धारण करो, जो तुम्हें सच का ज्ञान दे सके।)

ऐसा सतगुरु लोड़ि लहु
जिदू पाईऐ सचु सोई ।।

(सिरी रागु म. ३, पृ. ३०)

(ऐसे सतगुरु को ढूंढ लो जिससे कि सच की प्राप्ति हो सके।)

हमें वक्त के ऐसे गुरु की तलाश करना है जो सच का ज्ञान प्राप्त कर चुके हों और परमात्मा के साथ एक हो गये हों :

गुर गोविंदु गोविंदु गुरू है
नानक भेदु न भाई ॥

(आसा म. ४, पृ. ४४२)

इसलिये, हमारा गुरु कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो दिव्य शब्द और कुल-मालिक से मिलकर उनसे अभेद हो गया हो और साथ ही अपने देह-रूप में हमारे सीधे सम्पर्क में भी आ सकता हो। प्रकट रूप में गुरु मनुष्य है, लेकिन अन्तर में वह स्वयं परमात्मा है। गुरु की पहुँच सर्वोच्च आध्यात्मिक देश–सचखण्ड–तक होती है और वे उस निरंकार या सत्पुरुष के साथ एक हो गये हैं, जिसके एक रोम की ज्योति अरबों सूर्य और चन्द्र के इकट्ठे प्रकाश के बराबर है :

सांति सहज सूख मनि उपजिओ
कोटि सूर नानक परगास ॥

(टोडी म. ५, पृ. ७१७)

(गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि मन में सहज अवस्था की शान्ति और आनन्द आ गया है तथा अन्तर में करोड़ों सूर्य चमक रहे हैं।)

सहज अवस्था सचखण्ड में है। सचखण्ड तीनों गुणों से परे का चौथा लोक है। वह पूर्ण सत्य और वास्तविकता का मण्डल है :

त्रिहु गुणा विचि सहजु न पाइऐ ॥
त्रै गुण भरमि भलाई ॥
... ...
चउथे पद महि सहजु है
गुरमुखि पलै पाइ ॥

(सिरी रागु म. ३, पृ. ६८

(तीनों गुणों के देश में सहज अवस्था नहीं है, क्योंकि तीनों गुण (माया के) भ्रम-जाल में डूबे हुए हैं। चौथे देश में सहज अवस्था है और केवल गुरुमुख ही उसे प्राप्त कर सकते हैं।)

नामु जपत कोटि सूर उजारा
बिनसै भरमु अंधेरा ॥

(जैतसरी म. ५, पृ. ७००)

प्रकाश का यह अपार तेज और विस्तार सचखण्ड में मिलता है। पूर्ण गुरु वे हैं जो हमें नाम-अभ्यास या शब्द-योग की रीति सिखाते हैं और उस सचखण्ड को हमारा मंज़िले-मक्सूद बनाते हैं जो कि हमारा असली घर है, जहाँ सत्पुरुष या निरंकार निवास करते हैं और जहाँ बीन का दिव्य रूहानी संगीत लगातार गूँज रहा है।

रहंत जनमं हरि दरस लीणां ॥
बाजंत नानक सबद बीणां ॥

(सलोक सहसकृति म. ५, १३५५)

गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि दिन-रात जो परमात्मा के दर्शन में लीन रहते हैं, उनके अन्तर में बीन की अनहद धुन बजती रहती है ।)

हरि की प्रेम भगति मनु लीना ॥
नित बाजे अनहत बीना ॥
(सोरठि म. ५, पृ. ६२२)

(परमात्मा के प्रेम और भक्ति में मन डूबा हुआ है और अनहद बीन का संगीत हो रहा है ।)

गुज़रे ज़माने के सतगुरु अपने समय के पूरे सन्त रहे होंगे, पर हम उनके सम्पर्क में नहीं आये हैं और वे हमारी आत्मा को शब्द के साथ अब, इस समय, नहीं जोड़ सकते, क्योंकि वे देह-स्वरूप में मौजूद नहीं हैं । हमें अपने समय के मौजूदा सन्त-सतगुरु चाहियें, जिन्हें हम देख सकें, जिन से हम बात कर सकें, जिन की बात सुन सकें और जिनसे हम प्रेम भर सकें । ऐसे सतगुरु के बिना हम सच्चा नाम और मुक्ति नहीं पा सकते और परमात्मा में लीन नहीं हो सकते ।

इसलिये, ज़िन्दगी का हमारा सबसे पहला और ज़रूरी काम एक देह-स्वरूप सतगुरु की तलाश करना तथा उनसे नाम प्राप्त करना होना चाहिये । नाम-दान के बाद अगर गुरु चोला छोड़ जाते हैं तो भी हमें कोई नया गुरु करने की

ज़रूरत नहीं, क्योंकि गुरु का सूक्ष्म रूप हमेशा हमारे साथ रहता है और जब हम अन्तर में तीसरे तिल की ओर जाते हैं तब वे हमारी अगवानी करते हैं। गुरु, अपने नूरी रूप में, शिष्यों की उनके इस सांसारिक-जीवव के अन्तिम क्षण तक देख-भाल करते हैं और उनकी मृत्यु के बाद उन्हें उच्च आध्यात्मिक देशों में ले जाते हैं।

जब मनुष्य किसी पूर्ण सन्त से नाम-दान पा लेता है तो उसे सदा के लिये गुरु मिल जाता है। अपनी ज़िन्दगी में फिर कभी भी, अपने गुरु के चोला छोड़ देने के बाद भी, उसे दूसरे गुरु की ज़रूरत नहीं पड़ती। उसे अपने ही सत-गुरु के स्वरूप का ध्यान करना चाहियें; क्योंकि अन्त में मौत के समय उसके वे ही सतगुरु अपने सूक्ष्म नूरी स्वरूप में आकर उसे अपनी शरण में ले लेंगे और यमदूतों की यातना तथा नर्क की घोर पीड़ा से बचा लेंगे। वे अपने शिष्यों को ऊँचे आध्यात्मिक देशों को पार कराते हुए, अन्त में, सचखण्ड में सत्पुरुष, सतनाम या निरंकार की गोद में पहुँचा देंगे। वैसे हम सभी सन्तों और आध्यात्मिक पुरुषों (जो भी हमारे सम्पर्क में आएँ) की संगति और सत्संग से लाभ उठा सकते हैं। हमारे शब्द-योग के अभ्यास में सत्संग एक रक्षक के समान है, किन्तु रूहानी अभ्यास और रूहानी उन्नति केवल अपने सतगुर की दया और सहायता से ही प्राप्त कर सकते हैं।

'गुरुमत' के इस भाग में हम इस बात पर विचार करेंगे कि अगर सौभाग्य से हमें सतगुरु मिल जायें तो उन के प्रति हमारा भाव कैसा होना चाहिये ।

नोट : सभी उद्धरणों के नीचे लिखी पृष्ठ-संख्या १४३० पृष्ठों वाले श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में से है । म. महला का संकेत है और पृ. पृष्ठ का संकेत है ।

सच्ची भक्ति

यह एक साधारण नियम है कि अगर हम किसी मनुष्य से कुछ सीखना चाहते हैं, तो हमारे मन में उसके प्रति आदर और विनय की भावना होना ज़रूरी है। जब हम नाम प्राप्त करना चाहते हैं, जो कि जीवन की सबसे उत्तम और अनमोल वस्तु है, तो इस नाम का भेद प्रदान करने वाले सन्त के प्रति हमारे अन्तर में गहरे प्रेम, आदर और भक्ति की भावना होनी चाहिये। यही प्यार और आदर की भावना आगे बढ़ कर सच्ची तथा अटूट भक्ति में बदल जाती है। इस भक्ति में केवल गहरा लगाव और आदर ही नहीं होता, बल्कि इसमें हमारी ओर से सेवा तथा समर्पण की भावना भी आ जाती है। भक्ति में अहं-भाव को पूरी तरह से मालिक को अर्पित कर दिया जाता है। संसार की सब से ऊँची और सच्ची चीज़—नाम—को प्राप्त करने के लिये हमें सबसे बड़ी कीमत भी अदा करनी पड़ती है। वह कीमत है अपने सर्वस्व को उनके चरणों में न्योछावर करना। जब तक हम अपने सर्वस्व को सन्तों के हवाले नहीं कर देते, तब तक परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। हमें अपने तन, मन और आत्मा को

सन्तों के हवाले कर देना है। तब वे हमें परमात्मा के सच्चे दिव्य नाम के साथ जोड़ देते हैं :

तनु संतन का धनु संतन का मनु संतन का कीआ ॥
संत प्रसादि हरि नामु धिआइआ सरब कुसल तब थीआ ॥
(सोरठि म. ५, पृ. ६१०)

एक सच्चा जिज्ञासु तथा भक्त, अपने आप को अत्यन्त तुच्छ समझता है और सन्तों को अपना सर्वेसर्वा (सब कुछ) मानता है। वह अपने आप को सन्तों के चरणों की धूल समझता है और उनकी हर प्रकार की सेवा करने को तैयार रहता है :

हम संतन की रेनु पिआरे हम संतन की सरणा ॥
संत हमारी ओट सताणी संत हमारा गहणा ॥
(सोरठ म. ५, पृ. ६१४)

(हे प्यारे ! हम तो सन्तों की चरण-धूलि हैं और सन्तों की शरण ही हमारा आसरा है। सन्त ही हमारी ओट हैं, सन्त ही हमारे ज़ेवर और जवाहरात हैं।)

गुरुमुख शिष्य अपने आप को तथा अपनी बल-बुद्धि को सन्तों की मौज और उनके भाणे में रखता है और अपना धन उन्हीं की सेवा में खर्च करता है।

गुरु नानक साहिब ने प्रसिद्ध 'सच्चे सौदे' में यही किया था। आपके पिता जी ने रोज़गार के लिये आपको कुछ रुपये दिये थे। रास्ते में आपको कुछ साधु मिले और आपने सांसारिक वस्तुएँ खरीद कर उनसे मुनाफ़ा कमाने के बदले

अपना सारा रुपया उन साधुओं की सेवा में खर्च कर दिया। इस 'सच्चे सौदे' के लिये आपके पिता जी नाराज़ हुए और आपको चपत भी लगाई। उनको यह पता नहीं था कि उनका पुत्र नानक कितना महान् है और न उन्हें यह पता था कि सांसारिक वस्तुओं के मुनाफ़ों के स्थान पर, सन्तों की सेवा में धन लुटाकर उन से आत्मिक लाभ प्राप्त करना ही इस संसार में सच्चा सौदा है।

हमें गुरु नानक साहिब के 'सच्चे सौदे' का मार्ग अपनाना चाहिये और सन्त व सतगुरु की, बने वहाँ तक, सेवा करनी चाहिये और उन्हीं को सम्पूर्ण प्रेम और भक्ति अर्पित करनी चाहिये। अपने गुरु की सेवा करने तथा उनके चरणों में पड़े रहने से तन और मन पवित्र होते हैं तथा उनके उपदेश और हुक्म का पालन करने से हमें आन्तरिक प्रकाश और मुक्ति प्राप्त होती है :

तनु मनु धनु सभु सउपि गुर कउ हुकमि मंनिऐ पाईऐ ॥

(रामकली म. ३, आनन्द पृ. ९१८)

(अपना तन, मन, धन सब गुरु को अर्पित करके उनके हुक्म को मानने से तू परमात्मा को पायेगा।)

नाम या अनहद शब्द ही उनका 'हुक्म' है। प्रेम और भक्ति के बिना हमारा अहं खत्म नहीं हो सकता और न हम परमात्मा के दर्शन कर सकते हैं। हमारा अहं-भाव या हौमैं ही वह पर्दा है जोकि परमात्मा को हम से छिपाये हुए है।

प्रेम का अर्थ है अपना सर्वस्व अपने प्रियतम को, बग़ैर किसी पुरस्कार की आशा के सौंप देना। प्रेम का मतलब है अपना सब कुछ प्यारे मुर्शिद की सेवा में अर्पित कर देना, उनका सदा आभारी रहना और वे हमें चाहे जैसे रखें या चाहे कैसा भी व्यवहार हम से करें (जोकि हमारी नज़र में कृपामय या कठोर प्रतीत हो), हर हाल में प्रसन्न रहना। सच्चा प्रेमी या भक्त होना आसान नहीं है; यह संसार में सब से कठिन काम है। जब तक हम अपने अहंकार और 'मैं-मेरी' से, प्रेम और भक्ति के सहारे, छुटकारा न पा लें, तब तक हम हक़ीक़त को नहीं पा सकते :

आपु वंञाए ता सभ किछु पाए ॥
गुर सबदी सची लिव लाए ॥

(माझ म. ३, पृ. ११५)

(अगर तू अपने अहं से छुटकारा पा लेगा तो तुझे सब कुछ मिल जायेगा और गुरु के शब्द के द्वारा सच्ची भक्ति जाग्रत हो जायेगी।)

शब्द-योग के अभ्यास से सच्ची प्रीति और भक्ति उत्पन्न होती है। अगर हम अपने आपको शब्द के साथ जोड़ देंगे, तो हम प्रेम के सागर में तैरने लगेंगे, जोकि हमें गुरु और परमात्मा के साथ एक कर देगा :

नानक आपु छोडि गुर माहि समावै ॥

(गूजरी दी वार सलोक म. ३, पृ. ५०९)

ऊँचे आध्यात्मिक मण्डलों में सही माने में यही होता है

अर्थात् आत्मा मुर्शिद के नूरी स्वरूप में समा जाती है। उदाहरणार्थ, तीसरे पद या सुन्न देश में शिष्य की आत्मा, अटूट प्रेम तथा भक्ति के कारण, गुरु के उस मण्डल के वास्तविक रूप (जोकि पारब्रह्म का दिव्य शब्द है) में लीन हो जाती है। उस स्थान पर आत्मा के ऊपर से सारे खोल उतर जाते हैं और आत्मा अपने शुद्ध तथा मूल तेज़ व प्रकाश में चमक उठती है। पांचवें पद या सचखण्ड में आत्मा गुरु तथा परमात्मा (सतनाम) के साथ एक हो जाती है।

जब हम यह समझ जाते हैं कि परमपिता परमात्मा से हमारा मिलाप होना चाहिये, तब हमारे अन्तर में मालिक से बिछुड़ने की पीड़ा भभक उठती है :

मेरै अंतरि लोचा मिलण की किउ पावा प्रभ तोहि ॥
कोई ऐसा सजणु लोड़ि लहु जो मेले प्रीतमु मोहि ॥
(रामकली की वार, म. ५, पृ. ९५७)

(हे परमात्मा ! मेरे अन्तर में तेरे मिलाप की चाह जाग उठी है। मैं कैसे तुझ से मिलूँ ? कोई ऐसा साथी ढूंढ ले जो तुझे अपने प्रियतम से मिला दे।)

कोई ऐसे साथी तो बस सन्त या सतगुरु ही हो सकते हैं, केवल वे ही प्रियतम को पाने में हमारे सहायक हो सकते हैं।

कामिल मुर्शिद के बिना हमें उस दिव्य नाम का ज्ञान नहीं हो सकता और आत्मा इस नाम को पकड़े बिना हक़ीक़त या परमात्मा को नहीं पहचान सकती। इसलिये, ऐसे सन्त

या पूरे गुरु को सम्पूर्ण प्रेम और भक्ति अर्पित करते हुए हमें तन-मन से उनकी सेवा करनी चाहिये :

कोई आणि मिलावै मेरा प्रीतमु पिआरा
हउ तिसु पहि आपु वेचाई ॥
दरसनु हरि देखण कै ताई ॥
कृपा करहि ता सतिगुरु मेलहि
हरि हरि नामु धिआई ॥१॥ रहाउ ॥
जे सुखु देहि त तुझहि अराधी
दुखि भी तुझै धिआई ॥ २ ॥
जे भुख देहि त इत ही राजा
दुख विचि सूख मनाई ॥ ३ ॥
तनु मनु काटि काटि सभु अरपी
विचि अगनी आपु जलाई ॥ ४ ॥
पखा फेरी पाणी ढोवा जो देवहि सो खाई ॥ ५ ॥
नानकु गरीबु ढहि पइआ दुआरै हरि मेलि लैहु वडिआई ॥

(सूही अष्टपदियाँ म. ४, पृ. ७५७)

(कोई मेरा प्रीतम प्यारे से मिलाप करा दे, उसके हाथों में अपने आप को बेच दूँ। अपने प्यारे परमात्मा के दर्शन के लिये मैं तड़प रहा हूँ। अगर परमात्मा की दया होगी तो वह मुझे सतगुरु से मिलायेगा और सतगुरु मालिक के सच्चे नाम का अभ्यास सिखायेंगे। हे सतगुरु! अगर तू मुझे सुख देगा तो मैं तेरी ही आराधना करूँगा। अगर तू दुःख दर्द देगा तो भी मैं तेरा ही ध्यान करूँगा। अगर तू मुझे भूखा

रखता है तो मैं उसी में अपने को तृप्त समझूंगा और दुःख को मैं सुख मानूँगा। मैं अपने तन-मन के टुकड़े-टुकड़े करके तुझे अर्पण करूँगा और तेरे दर्शन के लिये स्वयं को अग्नि में भस्म कर दूँगा। मैं तुझ पर पंखा झुलाऊँगा, तेरे लिये पानी ढोऊँगा और जो भी तू देगा वही खाकर सन्तुष्ट रहूँगा। गुरु नानक साहिब प्रार्थना करते हैं कि हे सतगुरु! मैं गरीब तेरे द्वार पर आ पड़ा हूँ, अब तू दया-मेहर करके मुझे परमपिता परमात्मा से मिला दे।)

तै साहिब की बात जि आखै कहु नानक किआ दीजै ॥
सीसु वढे करि बैसणु दीजै विणु सिर सेव करीजै ॥
(वडहंस म. १, पृ. ५५८)

(गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि जो तुझे परमात्मा का सन्देश देगा, उसको तू क्या भेंट करेगा? अपना सिर काट कर उसी का आसन उसको दे और फिर बग़ैर सिर के उसकी सेवा कर।)

हमें अपने गुरु की बग़ैर सिर के (अर्थात् अहंकार को त्याग कर) सेवा करनी चाहिये। गहरी और सच्ची भक्ति के सहारे ही हम अभिमान और अहंकार को हटा सकते हैं। हमें अपने आप को तुच्छ से तुच्छ समझना चाहिये और अगर अपने सतगुरु की सेवा करने का मौका मिले तो हमें खुश होकर उनका एहसानमन्द होना चाहिये। जब हम अपने सतगुरु के दर्शन के लिये तरसते हैं, तब वे दया करते हैं। अपनी अपार दया-मेहर से प्रेरित हो, वे हमें अपनी चेतन

संगति और ऊँचा रूहानी सत्संग प्रदान करते हैं :

हम चातृक हम चातृक दीन हरि पासि बेनंती राम ।।
गुर मिलि गुर मेलि मेरा पिआरा
हम सतिगुर करह भगती राम ।।

(वडहंस म. ४, पृ. ५७४)

(मैं चातृक हूँ, एक दीन चातृक हूँ। मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि हे प्रभु ! मुझे मेरे सतगुरु से मिला दो। हे मालिक ! मैं अपने सतगुरु की प्रेम-पूर्वक भक्ति करना चाहता हूँ।)

गुरु के बाहरी देह-स्वरूप की सेवा और भक्ति करने से अन्तर में उनका सूक्ष्म ज्योतिर्मय रूप प्रकट हो जाता है। धीरे-धीरे गुरु के प्रति प्यार इतना गहरा और प्रबल हो जाता है कि उसकी गहराई और तन्मयता हमारे अन्तर की सम्पूर्ण गन्दगी को जलाकर भस्म कर देती है। इसके बाद शिष्य अपने अन्तर में प्रियतम के मिलाप के बिना नहीं रह सकता :

जिउ मछुली बिनु पाणीऐ किउ जीवणु पावै ।।
बूंद विहूणा चातृको किउ करि तृपतावै ।।
नाद कुरंकहि बेधिआ सनमुख उठि धावै ।।
भवरु लोभी कुसम वासु का मिलि आपु बंधावै ।।
तिउ संत जना हरि प्रीति है देखि दरसु अघावै ।।

(जैतस्री म. ५, पृ. ७०८)

(जिस प्रकार जल के बिना मछली जीवित नहीं रह सकती, स्वाति की बूंद के बिना चातृक तृप्त नहीं हो सकता,

संगीत में मस्त होकर हिरण शिकारी के सामने भी आ जाता है, फूल की सुगन्ध के वश होकर भौंरा अपने को कैदी बना लेता है; ऐसी ही प्रीति सन्तों की परमात्मा के साथ होती है, उसके दर्शन करके उनके आनन्द और तृप्ति की कोई सीमा नहीं रहती।)

सन्तों और परमात्मा के बीच और इसी प्रकार प्रेमी शिष्यों और सतगुरु के बीच जो प्रबल और पवित्र प्रेम होता है उसको समझाने के लिये संसार में कोई उदाहरण ही नहीं है। इस प्रेम को पाने के लिये हमें अपने सिर का बलिदान देना पड़ता है :

जउ तउ प्रेम खेलन का चाउ ॥
सिरु धरि तली गली मेरी आउ ॥
इतु मारगि पैरु धरीजै ॥ सिरु दीजै काणि न कीजै ॥
(सलोक म. १, पृ. १४१२)

[अगर तुझे सच्चा प्रेम करने का चाव है तो अपने सिर को हथेली पर रख कर अपने प्रीतम की गली में जा। इस मार्ग पर चलने के लिये अपने सिर का बलिदान कर दे तथा लोक-लाज की परवाह न कर।]

हमें तो केवल अपना सिर अर्पण कर देना है और इस बात का ख़याल ही नहीं करना है कि मालिक उसे मंज़ूर करता है या नामंज़ूर, हमारी इस भेंट की प्रशंसा होती है या निन्दा। 'मैं-मेरी' को पूरी तरह से छोड़ दो, गुरु से अलग अपने अस्तित्व को भूल जाओ। प्रेम और भक्ति के साथ

हमें अपने प्यारे सतगुरु की मौज और रज़ा में राज़ी रहना चाहिये और इस बात की खुशी मनाना चाहिये कि हमें अपने गुरु की सेवा में सिर अर्पण करने का मौका मिला है। प्रेम और भक्ति के अति कठिन मार्ग पर चलने की कामना हर कोई नहीं कर सकता। कोई सच्चा साहसी और बहादुर ही, बग़ैर किसी इनाम की चाह के, अपना सब कुछ किसी दूसरे पर अर्पण कर सकता है :

नानक सेवकु सोई आखीऐ जो सिरु धरे उतारि ॥
सतिगुरु का भाणा मंनि लए सबदु रखै उरधारि ॥

(सारंग की वार सलोक म. ३, पृ. १२४७)

(गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि सच्चा भक्त और सेवक वही है जोकि अपना सिर भेंट कर देता है, सतगुरु के भाणे में चलता है और अन्तर में शब्द के साथ जुड़ा रहता है।)

सतगुरु हमें परमात्मा के दरबार की राह दिखलाते हैं :

मनु तनु काटि देउ गुर आगै
जिनि हरि प्रभ मारगु पंथु दिखईआ ॥

(बिलावल म. ४, पृ. ८३६)

(अपने तन-मन को उन सतगुरु के चरणों में न्योछावर कर दो जिन्होंने कुल-मालिक के पास पहुँचने का मार्ग दिखलाया हैं।)

हमें धुर-धाम की राह पर चलाते हुए सतगुरु हमारे अन्दर के भ्रम और माया को दूर भगा देते हैं :

हउ मनु तनु देवउ काटि गुरु कउ
मेरा भ्रमु भउ गुर बचनी भागे॥
(गउड़ी पूरबी म. ४, पृ. १७२)

[मैं अपने तन-मन को काट कर गुरु की भेंट चढ़ा दूँगा। गुरु के वचनों से मेरे भय और भ्रम दूर हो गये हैं।]

गुरु का वचन अर्थात शब्द हमारे मन के सभी भय को दूर कर देता है।

लोग कभी-कभी पूछते हैं कि हम गुरु से, एक मनुष्य से, क्यों प्रेम और प्यार करें ? केवल परमपिता परमात्मा ही हमारी भक्ति और पूजा के अधिकारी हैं।

इसके जवाब में हम यही कहेंगे कि बेशक कुल-मालिक सब से ऊँची सत्ता है और केवल वही हमारे प्रेम और भक्ति का अधिकारी है; लेकिन वह इस संसार में अदृश्य है। हम अपनी ज्ञान-इन्द्रियों या बुद्धि के द्वारा न उसको जान सकते हैं और न पा सकते हैं। उसका रूप एकदम सूक्ष्म और अलौकिक है। इस मनुष्य-जीवन की स्थूल भूमि पर हम उसके साथ सम्बन्ध नहीं जोड़ सकते और न उससे प्यार ही कर सकते हैं। इस संसार में उसके जिस रूप के साथ सम्पर्क में आ सकते हैं, वह सन्त और सतगुरु का रूप है। सन्त और सतगुरु बाहरी रूप में मनुष्य दिखाई देते हैं, लेकिन अन्तर में वे परमात्मा के साथ एक हैं।

आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति और मालिक से मिलाप के लिये प्रेम और भक्ति ज़रूरी है। गुरु-भक्ति के बिना हम

न उच्च ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और न कुल-मालिक से अपनी एकता का अनुभव ही कर सकते हैं।

आज के वेदान्ती ग़लतफ़हमी में पड़े हैं। वे लोग गुरु-भक्ति का पाठ पढ़े बिना परमात्मा और हक़ीक़त का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। इसलिये, उन्हें वास्तविक या सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं होता, उनको उस परम सत्य का—जो बुद्धि की पहुँच से परे है—केवल बौद्धिक अनुमान या अंदाज़ा ही हो पाता है। हक़ीक़त का ज्ञान गुरु-भक्ति का ही प्रसाद होता है। गुरु के मनुष्य-स्वरूप की भक्ति करने से हम सूक्ष्म व परम चेतन शब्द को पकड़ने में समर्थ हो जाते हैं, यह शब्द ही गुरु तथा परमात्मा का असली रूप हैं। ऐसी भक्ति के पूर्ण होने पर ही हम परमात्मा के वास्तविक सूक्ष्म स्वरूप से प्रेम करने के योग्य हो सकते हैं।

शब्द-योग सबसे ऊँचे प्रकार का भक्ति मार्ग है। सच्चे और पवित्र प्रेम का सार ही शब्द है। इसलिये, शब्द का अभ्यास ही सबसे उत्तम और श्रेष्ठ भक्ति है।

आत्मा, मनुष्य की असलियत है और शब्द, गुरु तथा परमात्मा की असलियत है। इसलिये, आत्मा को शब्द के प्रति भक्ति और प्रीति, सबसे ऊँची भक्ति और उत्तम प्रीति होती है। पर हम इस भक्ति के परम-पद को तब तक नहीं पा सकते, जब तक, कि हम मनुष्य-स्वरूप में गुरु से प्रेम-भक्ति न कर लें। सतगुरु उस शब्द के प्रकट रूप होते हैं

जिसे ईसा मसीह ने 'वर्ड' कहा है। बाइबल में कथन है, 'शब्द ने ही मानव रूप धारण किया'।

हम मनुष्य हैं और इसलिये हम किसी ऐसे प्राणी से ही —जो कि हमारी सतह पर हो और हमारे समान ही इस स्थूल संसार में रहता हो—प्रेम-प्यार कर सकते हैं।

इस संसार में सृष्टि का सब से उत्तम प्राणी मनुष्य है। संसार के दूसरे जीवों—पेड़ों-पौधों, कीड़ों-मकौड़ों, पक्षियों तथा चौपायों—से मनुष्य ऊँचा है। इन सभी जीवों में मनुष्य के समान मन-बुद्धि का विकास नहीं होता है।

मनुष्यों में भी वह मनुष्य सब से उत्तम है जिसने अपने आप को और परमात्मा को पहचान लिया। ऐसा मनुष्य ही सन्त या गुरु है और केवल वही हमारे सच्चे तथा अटूट प्रेम और भक्ति का अधिकारी है। हमारी आत्मिक जागृति और मनुष्य अवस्था से परमात्म-पद की प्राप्ति के मार्ग में हम केवल एक ही व्यक्ति से प्यार करते हैं, उसे चाहे गुरु कहो, चाहे परमात्मा।

गुरु इस संसार में मनुष्य के रूप में प्रकट होते हैं। जब शिष्य की आत्मा सूक्ष्म देश में जाती है, तब गुरु अपने आप को सूक्ष्म नूरी रूप में प्रकट करते हैं। जब शिष्य इससे ऊपर, कारण देश में जाता है तब गुरु ब्रह्म का कारण रूप धारण कर लेते हैं और जब शिष्य पारब्रह्म के विशुद्ध चेतन आत्मिक मण्डल में पहुँचता है, तब वहाँ पर गुरु का रूप

शब्द होता है। अन्त में जब जीवात्मा अपने सच्चे घर सचखण्ड में पहुँचती है, तब वह वहाँ देखती है कि गुरु ही सत्पुरुष या निरंकार हैं। गुरु इन अलग-अलग रूपों में शिष्य को दर्शन देते हैं और संसार से सचखण्ड तक की पूरी रूहानी यात्रा में शिष्य, गुरु की भक्ति करता है।

आत्मा की इस आन्तरिक रूहानी यात्रा को हम ऊपर से नीचे की ओर भी देख सकते हैं। परमात्मा सचखण्ड में सत्तुरुष के रूप में बिराजमान है, नीचे पारब्रह्म में शब्द रूप में कारण देश में ब्रह्म रूप में तथा सूक्ष्म देश में ज्योति निरंजन के रूप में हैं। ये सब ही सतगुरु के भी आन्तरिक रूप होते हैं। इस संसार में परमात्मा अदृश्य है। मनुष्य के चोले में सतगुरु यहाँ परमात्मा का प्रकट रूप है। गुरु और परमात्मा अपने असली रूप में एक ही हैं। इसलिये हम अपनी रूहानी चढ़ाई में एक ही व्यक्ति से प्रेम करते हैं, चाहे उसे परमात्मा कहें, चाहे सतगुरु।

गुरु के मनुष्य रूप से प्यार करते-करते हम गुरु के सूक्ष्म सार रूप (परमात्मा) को पा लेते हैं। प्रेम ही वह सीढ़ी है जिसके सहारे हम अपनी अन्तिम मंज़िल सचखण्ड (जो कि हमारा निज-घर है) पहुँच जाते हैं और वहाँ सत्तुरुष में सदा के लिये पूरी तरह से विलीन हो जाते हैं।

यह केवल मिलाप ही नहीं है, बल्कि मिल कर एक हो जाना है। यह आत्मा का परमपिता परमात्मा के साथ अपनी

एकता का अनुभव करना है। बूँद, समुद्र में मिल कर समुद्र बन जाती है। यह मिलाप उस परम चेतन समुद्र का एक अंश या हिस्सा बनना नहीं है, क्योंकि उस समुद्र (परमात्मा) के भाग नहीं हो सकते। जैसा कि दार्शनिकों या फ़िलासफ़रों ने कहा है, परमात्मा एक पूर्ण, अविभाज्य (जिसे बांटा न जा सके) चेतन सत्ता हैं। इसलिए हमें कहना चाहिये कि परमात्मा की प्राप्ति के बाद आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती हैं और स्वयं परमात्मा ही बन जाती हैं। परमात्मा और आत्मा सदा से एक ही हैं; लेकिन इस सत्य को हमें अपने अनुभव द्वारा समझना है।

परमात्मा एक ऐसी सत्ता है जो कि हरेक आत्मा में अपने पूरे रूप में मौजूद है :

आतम महि रामु राम महि आतमु ॥

(भैरउ असटपदीआं म. १, पृ. ११५३)

फिर भी वह केवल एक ही रहता है और कभी भी एक से ज़्यादा नहीं होता। केवल परमात्मा ही हक़ीक़त है; हर वस्तु का एक मात्र सार और हक़ीक़त वही है। बाकी सब कुछ उसका प्रतिबिम्ब, छाया, कल्पित रूप या भ्रम है (ख़ुद परमात्मा नहीं है)। जीवात्माओं की तुलना सूर्य (अर्थात् परमात्मा) की किरणों से की जा सकती है। सही माने में एक या एक से अधिक होने की बात परमपिता परमात्मा के बारे में लागू नहीं हो सकती। फिर भी केवल

अपने गुरु की भक्ति के सहारे ही आत्मा परमात्मा में लीन होकर, इस सत्य को जान जाती है कि आत्मा और परमात्मा एक हैं।

आन्तरिक आत्म-ज्ञान को पाने और ऊँचे रूहानी मंडलों में चढ़ाई करने का सच्चा गुर अपने सतगुरु की भक्ति में है। केवल गुरु-भक्ति के सहारे ही हम अपने आप को शब्द के साथ जोड़कर मालिक के साथ एक हो सकते हैं। गुरु भक्ति ही वह शक्ति है जो प्रेमी (शिष्य) और प्रीतम (परमात्मा) के बीच के बन्धन को पक्का तथा अटूट बना देती है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के अनुसार मनुष्य-जीवन का असली उद्देश्य परमात्मा के सच्चे नाम को पा लेना है। उसका यह सच्चा नाम सिर्फ़ सन्त या सतगुरु से ही मिल सकता है। केवल वे ही हमें यह नाम की रूहानी दौलत बख़्श सकते हैं। इसलिये हमें अपना सम्पूर्ण प्रेम और भक्ति भाव सतगुरु के चरणों में अर्पित करना चाहिये।

सच्चा तथा उत्सुक जिज्ञासु, परमात्मा से सदा सन्त-सतगुरु के दर्शन, संगति और सत्संग के लिये प्रार्थना करता है। वह दिन-रात अपने सतगुरु की सेवा करने के लिये तरसता है। वह सतगुरु से जल्दी से जल्दी नामदान प्राप्त करना चाहता है, क्योंकि कोई नहीं कह सकता कि कब इस संसार से कूच की घड़ी आ जायेगी। सतगुरु की अटूट

भक्ति के सहारे जीव परमात्मा से जुड़ जाता है। सतगुरु भूले-भटके जीवों को वापिस अपने घर ले जाने के लिये, परमात्मा के यहाँ से आते हैं :

जिनि तुम भेजे तिनहि बुलाए
सुख सहज सेती घरि आउ ॥
(धनासरी म. ५, पृ. ६७८)

(जिसने तुम्हें यहाँ भेजा है, वही वापिस बुला रहा है। सहज के आनन्द के साथ वापिस अपने घर चले आओ।)

गुरु हमारे लिये परमपिता का सन्देश लाते हैं :

हरि कीआ कथा कहाणीआ गुरि मीति सुणाईआ ॥
बलिहारी गुर आपणे गुर कउ बलि जाईआ ॥१॥
आइ मिलु गुरसिख आइ मिलु तू मेरे गुरु के पिआरे ॥
हरि के गुण हरि भावदे से गुरु ते पाए ॥
जिन गुर का भाणा मंनिआ तिन घुमि घुमि जाए ॥२॥
जिन सतिगुरु पिआरा देखिआ तिन कउ हउ वारी ॥
जिन गुर की कीनी चाकरी तिन सद बलिहारी ॥३॥
हरि हरि तेरा नामु है दुख मेटणहारा ॥
गुर सेवा ते पाईऐ गुरमुखि निसतारा ॥४॥
(तिलंग म. ४, पृ. ७२५)

(मेरे सतगुरु, मेरे मित्र ने मुझे परमात्मा का सन्देश दिया और वार्ता सुनाई। हे सतगुरु ! मैं आप पर बार-बार बलिहारी जाता हूँ। हे मेरे गुरुभाइयो ! आओ, मैं तुम सभी से मिलना चाहता हूँ। तुम सभी मेरे गुरु के प्यारे हो।

परमात्मा को अपने गुण ही बन्दों में भी अच्छे लगते हैं, मैंने अपने गुरु से उन्हीं गुणों को पाया है। जो गुरु के भाणे या मौज को मंज़ूर करते हैं, उन पर मैं बार-बार बलिहारी जाता हूँ। जिन्होंने मेरे प्यारे सतगुरु के दर्शन किये हैं, उन पर मैं न्योछावर होता हूँ। जिन्होंने सतगुरु की सेवा-चाकरी की है, उन पर मैं सैंकड़ों बार बलिहारी जाता हूँ। हे परमात्मा! तेरा नाम सब दुखों को दवा है। गुरु-सेवा से सेवक को यह नाम प्राप्त होता है और तब वह सच्ची मुक्ति पा लेता है।)

अगर हम दुनियादारों की ख़ातिरदारी और उनकी खुशी का ख़याल रखते हैं, तो यह हमारी सामाजिक ज़िम्मेदारियों की दृष्टि से ठीक माना जा सकता है। पर ऐसा करते हुए अगर हम उनको खुश करने में अपना तन-मन ही लगा दें और गुरु तथा गुरु की संगत की सेवा का ख़याल ही भूल बैठें, तो दुनियादारों के प्यार और लोक-लाज के कारण हम माया तथा बाहरी सामाजिक बन्धनों में और अधिक फँसते जायेंगे।

अगर हम सन्तों की सेवा में अपना तन-मन लगा देंगे और उनकी भक्ति में डूबे रहेंगे, तो भी जाग्रत होकर एक दिन अवश्य ही उनके समान हो जायेंगे। सन्तों और सतगुरु की संगति हमारे मन को शुद्ध करती हैं और आत्मा को ऊपर उठाती है:

मन मेरे गुर सरणि आवै ता निरमलु होइ ॥
मनमुख हरि हरि करि थके मैलु न सकी धोई ॥
(सिरी राग म. ३, पृ. ३९)

(हे मेरे मन ! अगर तू गुरु की शरण में आयेगा तो निर्मल हो जायेगा। संसारी लोग 'हरि हरि' पुकारते रहते हैं पर इससे वे अपने मन के मैल को नहीं हटा सकते।)

संसारी लोग अपने हानि-लाभ का अन्दाज़ा सदा रुपये पैसे और धन-दौलत से लगाते हैं। वे यह नहीं जानते कि सच्चा लाभ रूहानी होता है, न कि संसार के पदार्थों का। यह सच्चा लाभ, सतगुरु की भक्ति के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। सांसारिक धन-दौलत के घाटे और मुनाफ़े की चिन्ता हमें और अधिक गन्दा बना देती है। गहरी भक्ति और नम्रता के साथ की गई सतगुरु की सेवा ही हमें पवित्र और निर्मल बनाती है। सांसारिक धन-दौलत और औहदे के गुमान को दूर हटाकर, हमें गुरु के सामने नम्रता-पूर्वक रहना चाहिये तथा गुरु को परमात्मा मान कर उनसे प्यार करना चाहिये। ऐसा करने से हम और हमारे शरीर का अंग-अंग पवित्र हो जायेगा :

सो सीसु भला पवित्र पावनु है मेरी जिंदुड़ीए
जो जाइ लगै गुर पैरे राम ॥
गुर विटहु नानकु वारिआ मेरी जिंदुड़ीए
जिनि हरि हरि नामु चितेरे राम ॥
(आदि ग्रन्थ म. ४, पृ. ५४०)

(वही सिर भला है, पवित्र और पाक है जो कि गुरु के चरणों में जा लगा है। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि मैं अपने आपको गुरु के चरणों में न्योछावर करता हूँ जिन्होंने मुझ से नाम की भक्ति करवाई है।)

परमात्मा के दरबार में उसी सिर की क़द्र है जो कि गुरु के चरणों में पड़ा हुआ है। नम्रता में ही हमारी महानता है। अहंकार और अभिमान परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग में रोड़े हैं। गुरु के सामने सदा दास बनकर रहना चाहियें, तभी परमात्मा हमें स्वीकार करेगा। हमारी आँखें, हमारे कान, हाथ, पैर, सभी गुरु की सेवा में लगे रहने चाहियें और तभी वे निर्मल और पवित्र हो सकेंगे :

ते नेत्र भले परवाण हहि मेरी जिंदुड़ीए
जो साधू सतिगुरु देखहि राम ॥
ते हसत पुनीत पवित्र हहि मेरी जिंदुड़ीए
जो हरि जसु हरि हरि लेखहि राम ॥
(आदि ग्रन्थ म. ४, पृ. ५४०)

(हे परमात्मा ! आँखें वे ही भली और सार्थक हैं जो साध-सन्तों के दर्शन करती हैं। वे ही हाथ पाक और पवित्र हैं जो परमात्मा का गुणगान लिखते हैं।)

जो गुरु की सेवा करता है, मालिक उसे अपनाता है। जो लोग सतगुरु के चरणों में अपनी भक्ति और प्रीति अर्पण करते हैं, कुल मालिक के दरबार में उनके मुख उजले होते हैं :

से दाड़ीआं सचीआ जि गुर चरनी लगंन्हि ॥
अनदिनु सेवनि गुरु आपणा अनदिनु अनदि रहंन्हि ॥
नानक से मुह सोहणे सचै दरि दिसंन्हि ॥
(आदि ग्रन्थ म. ३, पृ. १४१९)

(वह दाढ़ी सच्ची है जो गुरु के चरणों को छूती है। जो रात-दिन अपने गुरु की सेवा करता है वह सदा परम आनन्द में मग्न रहता है। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि ऐसे जीव का मुख परमात्मा के दरबार में सुन्दर दिखाई देता है।)

केवल गुरु ही हमारी पूजा और भक्ति के अधिकारी हैं। वे इस धरती पर सबसे उत्तम पुरुष हैं। वे प्रेम और दया के भण्डार हैं। उनकी पूजा स्वयं परमात्मा की पूजा है।

जब हम अपने गुरु और उनकी संगत की सेवा और मेज़बानी करते हैं, तब हमारे कर्म पवित्र हो जाते हैं और साथ साथ ही हमारी सभी वस्तुएँ, मकान, फर्नीचर, गाड़ी, घोड़े, इत्यादि भी पवित्र हो जाते हैं।

तिन के घर मंदर महल सराई सभि पवितु हहि,
जिनी गुरमुखि सेवक सिख अभिआगत जाइ वरसाते ॥
तिन के तुरे जीन खुरगीर सभि पवितु हहि,
जिनी गुरमुखि सिख साध संत चड़ि जाते ॥
(म. १, पृ. ६४८)

(उनके घर, भवन, महल और सराय सब पवित्र हैं, जिनके यहाँ सतगुरु, उनके मेहमान, शिष्य और सेवक जाकर

ठहराते हैं। उनके वे घोड़े और घोड़ों का साज़-समान भी पवित्र हो जाता है, जिन पर कि साध और सन्त सवारी करते हैं।)

सतगुरु तथा सन्तों के सम्पर्क में आने से सभी स्थान और वस्तुएँ पवित्र हो जाती हैं कि पारस पत्थर के छूने से लोहा सोना बन जाता है। पारस पत्थर संसार में है या नहीं, यह हम नहीं कह सकते। लेकिन सन्तों की संगति मामूली इन्सान को देवता और भगवान बना देती है, इसलिये हम कह सकते हैं कि सन्त और सतगुरु ही इस संसार में सच्चे पारस हैं। उनकी भक्ति के द्वारा हमारी आतमा शुद्ध आत्मिक मण्डलों में जाकर सदा के लिये जन्म-मरण से मुक्त हो सकती है। गुरु की आध्यात्मिकता और दया-मेहर का चेतन स्पर्श हमें मनुष्य से परमातमा बना देता है :

जिनि माणस ते देवते कीए, करत न लागी वार ॥

(आसा म. १, पृ. ४६२)

(गुरु, जीवों को इन्सान से भगवान बना देते हैं और ऐसा करने में उनको देर नहीं लगती।)

नाम के अपने अभ्यास में जब शिष्य गुरु के नूरी स्वरूप तक पहुँच जाता है, तब तक वह एक दिव्य चेतन हस्ती बन जाता है :

गुरु मेरी पूजा गुरु गोबिंदु ॥
गुरु मेरा पारब्रहमु गुरु भगवतु ॥
गुरु मेरा देउ अलख अभेउ ॥

सरब पूज चरण गुर सेउ ॥
गुर बिनु अवरु नाही मै थाउ ॥
अनदिनु जपउ गुरू गुर नाउ ॥
(गोंड म. ५, पृ. ८६४)

(गुरु मेरे आराध्य देव हैं, गुरु ही मेरे परमात्मा हैं। गुरु मेरे पारब्रह्म हैं, कुल मालिक हैं, वे ही मेरे स्वामी हैं, वे अलख और अभेव (जिसके भाग न हो सके) हैं। गुरु के चरणों की सेवा में इन सब की पूजा है। गुरु के बिना मेरा कोई ठिकाना नहीं है। रात-दिन मैं उन्हीं के सुमिरन और ध्यान में लगा रहता हूँ।

अपनी सारी बुद्धि और चतुराई को त्याग कर हमें अपने गुरु की मौज में पड़े रहना चाहिये और हर काम उन्हीं के हुक्म के मुताबिक करना चाहिये, हमें गुरु की सेवा एक ग़ुलाम की तरह से करना चाहिये, उनके हरेक हुक्म का ख़ुशी के साथ पालन करना चाहिये और इसके बदले किसी इनाम की आशा या इच्छा नहीं रखना चाहिये। अगर हमारी सेवा निस्स्वार्थ होती है और अगर हम अपनी मेहनत और सेवा के बदले किसी प्रकार के इनाम की ज़रा सी भी इच्छा नहीं रखते, तो परमात्मा प्रसन्न होकर हमारे अन्दर प्रकट होते हैं। गुरु की भक्ति परमात्मा की ही भक्ति है, क्योंकि गुरु में कुल-मालिक का सार और सामर्थ्य है, वे कुल-मालिक के अवतार हैं। अगर हम अपने सतगुरु की भक्ति करते हैं, तो परमात्मा इसे अपनी ही भक्ति मानता

है और इसलिये वह प्यार और दया-मेहर के साथ हमारी देख-भाल करता है तथा हमें आध्यात्मिक हानि से बचाता है :

गुर कै गृहि सेवक जो रहै ॥
गुर की आगिआ मन महि सहै ॥
आपस कउ करि कछु न जनावै ॥
हरि हरि नामु रिदै सद धिआवै ॥
मनु बेचै सतिगुर कै पासि ॥
तिस सेवक के कारज रासि ॥
सेवा करत होइ निहकामी ॥
तिसु कउ होत परापति सुआमी ॥

(आदि ग्रन्थ म. ५, पृ. २८६)

(जो शिष्य अपने गुरु के घर या आश्रम में रहता है, उसे उनके हुक्म का बड़ी ख़ुशी और उत्साह के साथ पालन करना चाहिये । उसे अपने आप को सदा सब से तुच्छ समझना चाहिये और अन्तर में लगातार परमात्मा के नाम का सुमिरन करते रहना चाहिये । जो शिष्य अपने मन को गुरु के हाथों बेच देता है, वह अपने अभ्यास में सफल होता है, उसका सब काम पूर्ण हो जाता है । जो निष्काम होकर सेवा करता उसको परमात्मा की प्राप्ति होती है ।)

अपने गुरु के लिये हमे तुच्छ सेवा करने में भी संकोच नहीं करना चाहिये :

पाणी पखा पीसु दास कै होहि निहालु ॥
राज मिलख सिकदारीआ अगनी महि जालु ॥

संत जना का छोहरा तिसु चरणी लागि ॥
माइआधारी छत्रपती तिन्ह छोड़उ तिआगि ॥१॥
संतन का दाना रूखा सो सरब निधान ॥
गृहि साकत छतीह प्रकार ते बिखू समान ॥२॥
भगत जना का लूगरा ओढि नगन न होई ॥
साकत सिरपाउ रेसमी पहिरत पति खोई ॥३॥
साकत सिउ मुखि जोरिऐ अध वीचहु टूटै ॥
हरि जन की सेवा जो करे इत ऊतहि छूटै ॥४॥
सभ किछु तुम ही ते होआ आपि बणत बणाई ॥
दरसनु भेटत साध का नानक गुण गाई ॥
(आ.द ग्रन्थ म. ५, पृ. ८११)

(हे सतगुरु ! मैं तुम्हारे दास का पंखा झल कर, पानी ढो कर तथा अन्न पीस कर ख़ुश रहूँगा । राज-पाट, धन-दौलत और ऊँचे पदों को मैं अग्नि में भस्म कर दूँगा । सन्तों के चरणों में गिरे रहना तथा वहीं दास बनकर पड़े रहना मंज़ूर है लेकिन संसारी लोगों से—भले ही वह राजा-महाराजा ही क्यों न हों—दूर रहूँगा । सन्तों के यहां की रोटी उत्तम पकवान है, पर संसारियों के यहां का छत्तीस प्रकार का भोजन भी ज़हर के समान है । परमात्मा के भक्तों का फटा-पुराना चिथड़ा पहनकर भी मेरा तन ढक जायेगा; लेकिन संसारी लोगों की रेशमी और कमख़ाब की पोशाक पहनने पर भी मेरी इज्ज़त जाती रहेगी । संसारी लोगों की दोस्ती अध-बीच में टूट जाती है, पर जो मालिक

के भक्तों की सेवा करते हैं, वे यहां और इसके बाद भी मुक्त रहते हैं। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि हे परमात्मा! तू ही इस सृष्टि का कर्ता है, तू ही सब कुछ करने वाला है मेरी यही बिनती है कि मुझे साध-सन्तों का दर्शन और मिलाप दे, ताकि मैं सदा तेरा गुणगान करता रहूँ।

गुरु नानक साहिब परमात्मा से साध-सन्तों के दर्शन संगति और सत्संग के लिये प्रार्थना करते हैं। सन्तों और सतगुरु से ही वह दिव्य नाम मिलता है। सभी आध्यात्मिक पुरुष गुरु की भक्ति और उनके भक्तों की सेवा का उपदेश देते हैं। इस संसार में इससे उत्तम और श्रेष्ठ और कोई काम नहीं है।

टहल करउ तेरे दास की, पग झारउ बाल ॥
मसतकु अपना भेट देउ, गुन सुनहु रसाल ॥
(बिलावल म. ५, पृ. ८१०)

(मैं तेरे दास की सेवा करूँगा, उनके चरणों को पखारूँगा, उन्हें अपना सिर भेंट चढ़ाऊँगा और उनके गुणों को ही सुनता रहूँगा।)

गुरु स्वयं जीवन मुक्त (जीते जी मुक्त) हो चुके हैं और वे नाम-भक्ति करवा कर दूसरों को भी मुक्त कर देते हैं। गुरु की सेवा आत्मा रूपी मोटर के लिये तेल और पेट्रोल के समान है, जिसके द्वारा वह सूक्ष्म रूहानी मण्डलों के दुर्गम मार्ग को आसानी और तेज़ी से पार कर जाती है :

सतिगुरि सेविऐ मनु निरमला भए पवितु सरीर ॥
मनि आनंदु सदा सुखु पाइआ भेटिआ गहिर गंभीरु ॥
मन रे सतिगुरु सेवि निसंगु ॥
सतिगुरु सेविऐ हरि मनि वसै, लगै न मैलु पतंगु ॥
(सिरी राग म. ३, पृ. ६९)

(सतगुरु की सेवा करने से मेरा मन निर्मल और तन पवित्र हो गया है। मैं सदा आनन्द में मग्न रहता हूँ, क्योंकि मुझे पूर्ण परमात्मा मिल चुका है।......हे मन ! बग़ैर किसी हिचकिचाहट के अपने सतगुरु की सेवा कर। सतगुरु की सेवा करने से अन्तर में परमात्मा प्रकट होते हैं और तब संसार का मैल छू भी नहीं सकता।)

एक स्नेहमयी माता अपने बच्चों को नुक्सान देने वाली वस्तुएँ नहीं देती। इसी प्रकार, गुरु भी अपने शिष्यों को ऐसी चीज़ नहीं देते जो कि उनकी रूहानी चढ़ाई में बाधक हो। वे हमारी भक्ति और विश्वास की मात्रा के अनुसार ही अपनी दात बख़्शते हैं। गुरु की सेवा के द्वारा ही हम सब कुछ पा सकते हैं :

सतिगुर सेवे ता सभ किछु पाए ॥
जेही मनसा करि लागै तेहा फलु पाए ॥
सतिगुर दाता सभना वथू का, पूरै भागि मिलावणिआ ॥
(माझ म. ३, पृ. ११६)

(अगर तू अपने सतगुरु की सेवा करेगा तो तुझे सब कुछ मिल जायेगा। जिस भावना के साथ तू उनकी सेवा

करेगा, उसी के अनुसार फल भी पायेगा। सतगुरु तो सब पदार्थों के सच्चे दाता हैं, लेकिन पूरे भाग्य से ही उनका मिलाप होता है।)

हम जिस भावना और मनोकामना के साथ सतगुरु का चिन्तन और सेवा करते हैं, उसी के अनुसार हमें फल मिलता है। अगर हम बग़ैर किसी कामना या इच्छा के उनकी सेवा करते हैं, तो हमें गुरु और परमात्मा दोनों मिल जाते हैं।

गुरु की सेवा और भक्ति के द्वारा ही हम नाम का अभ्यास ठीक तरह से कर सकते हैं और ऊँचे रूहानी मण्डलों में रसाई पा सकते हैं :

सतिगुरु सेवि परमपदु पाइआ, हरि जपिआ सास गिरासे ॥
जिन कउ हरि प्रभ किरपा धारी, ते सतिगुरु सेवा लाइआ ॥
(वडहंस म. ४, पृ. ५७३)

(सतगुरु की सेवा करके मैंने परम-पद पा लिया। अब मैं स्वास-स्वास परमात्मा को याद करता हूँ। जिस पर परमात्मा दया-मेहर करता है, उसको सतगुरु की सेवा में लगा देता है।)

प्रेम तथा भक्ति के साथ सतगुरु की सेवा, परमात्मा की बहुत बड़ी दात है, जो कुछ चुने हुए लोगों के भाग्य में ही होती है। हम में से कितने ऐसे हैं जो यह जानते हैं कि परमात्मा केवल सतगुरु के ज़रिये ही मिल सकता है और सतगुरु की सेवा ही परमात्मा की सेवा है? हम में से कई

लोग नदियों-तालाबों के पानी से अपने मन का मैल धोना चाहते हैं। लेकिन पानी कैसे मन को साफ कर सकता है या उसके पापों और बुरे कर्मों को मिटा सकता है? सतगुरु के प्रेम और भक्ति से तथा उनकी और उनके भक्तों की सेवा करने से केवल हमारा मन ही साफ़ और पवित्र नहीं होता, बल्कि हमें सच्ची मुक्ति प्रदान करने वाला नाम भी प्राप्त हो जाता है:

हरि धनु संचहु रे जन भाई॥
सतिगुरु सेवि रहहु सरणाई॥
(आदि ग्रन्थ म. १, पृ. १०३९)

(हे भाई! हरि-नाम रूपी धन का संचय करो, सतगुरु की सेवा करो और उनकी शरण में पड़े रहो।)

सतगुरु की प्रीति और भक्ति के लिये और उसकी तथा साध-संगत की सेवा के लिये गुरु साहिबों ने बार-बार ज़ोर दिया है, क्योंकि रूहानी तरक्की के लिये यह बहुत ही ज़रूरी है। पूरे गुरु की सेवा और भक्ति, हक़ीक़त के ज्ञान की प्राप्ति और परमात्मा से मिलाप का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

गुरु-परायण शिष्य अपनी रूहानी चढ़ाई के लिये अपने सतगुरु पर पूरी तरह से निर्भर रहता है। केवल गुरु की भक्ति ही हमें सदा का आनन्द और मुक्ति प्रदान करती है:

जिन पाइआ तिन पूछहु भाई॥
सुख सतिगुर सेव कमाई हे॥
(आदि ग्रन्थ म. १, पृ. १०२६)

(हे भाई ! सतगुरु की सेवा में क्या सुख है, यह तुम उनसे पूछो जिन्होंने (परमात्मा को) पा लिया है ।)

परमात्मा आनन्द का सागर है, सतगुरु के द्वारा ही हम उसे पा सकते हैं । सतगुरु हमें अनहद शब्द प्रदान करते हैं, जो हमें परमपिता के चरणों में ले जाता है । इस दिव्य शब्द या धुन के बिना हम परमात्मा को नहीं पा सकते और परमात्मा की प्राप्ति के बिना मन में सच्चा आनन्द तथा शान्ति नहीं आ सकती । चूँकि यह दिव्य शब्द पूरे सतगुरु के सिवाय किसी और से नहीं मिल सकता; इसलिये सच्चे आनन्द और मुक्ति को पाने के लिये गुरु की भक्ति और सेवा अत्यन्त आवश्यक है । कुल-मालिक ख़ुद चाहता है कि मनुष्य सतगुरु की सेवा करे :

गुर सेवा आपि हरि भावै ॥

(आदि ग्रन्थ म. ४, पृ. १६५)

परमात्मा ने स्वयं यह विधान बनाया है कि सनगुरु के प्रेम, सेवा और भक्ति के बग़ैर उसे नहीं पाया जा सकता । यह सेवा और भक्ति सब से ऊँचा शुभ-कर्म और सब से बड़ी तपस्या है :

गुर सेवा तपां सिरि तपु सारु ॥

(आदि ग्रन्थ म. ३, पृ. ४२३)

(गुर की सेवा सब तपों में श्रेष्ठ तप है, यह सब तपों का सार है ।)

दूसरे प्रकार की तपस्याएँ केवल शरीर को कष्ट देती हैं

वे रूहानी चढ़ाई में कुछ भी मदद नहीं करतीं। गुरु की सेवा का फल अन्तर में आत्मा का अनहद शब्द तथा परमपिता परमात्मा के साथ मिलाप है। इस सेवा के द्वारा सत्य की प्राप्ति के लिये हमारी सब कोशिशें और आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं :

सतिगुरु सेवि सभै फल पाई ॥

(आसा म. ५, पृ. ३७५)

सतगुरु सर्वशक्तिमान हैं, वे हर पदार्थ के दाता हैं। जो कुछ भी हम चाहते हैं, हमारे सतगुरु दे सकते हैं, पर वे हमें केवल वे वस्तुएँ ही देते हैं जो कि हमारी रूहानी तरक्की में सहायक हों।

सतगुरु की सेवा करने से हमारे अहंकार का नाश होता है और हमारी आत्मा परम आनन्द के रूहानी मण्डलों में विचरने के लिये आज़ाद हो जाती है :

सतिगुरु सेवे सो सुखु पाए, जिन हउमै विचहु मारी ॥

(सारंग दी वार सलोक म. ३, पृ. १२४६)

(जो सतगुरु की सेवा करता है, वह सब सुख पाता है, क्योंकि उसने अहंकार का नाश कर लिया है।)

सतगुरु सब से ऊँची हस्ती है, क्योंकि वे कुल-मालिक से मिलकर एक हो चुके हैं। अगर हम परमात्मा की पूजा करना चाहते हैं, तो हम उसको गुरु के स्वरूप में पूज सकते हैं। अगर हम गुरु की भक्ति कर रहे हैं तो यह परमात्मा की ही भक्ति है और परमात्मा भी इसे अपनी ही भक्ति मानता है :

जो गुर कउ जनु पूजे सेवे, सो जनु मेरे हरि प्रभ भावै ।।
हरि की सेवा सतिगुरु पूजहू, करि किरपा आपि तरावै ।।
(मलार म. ४, पृ. १२६४)

(जो मनुष्य गुरु की सेवा और पूजा करता है, उसे परमात्मा भी चाहता है। अगर परमात्मा की सेवा करना है तो सतगुरु की पूजा कर, तब परमात्मा स्वयं कृपा करके तुझे तार लेगा।)

गुरु की दया-मेहर पर ही सब कुछ निर्भर है। उनकी दया अपार है। वे तो सदा दयालु हैं और हम पर दया करने के लिये उन्हें हमारी ओर से सिर्फ बहाने मात्र के लिये ही कोई कारण चाहिये। उनको हमारे कल्याण की हम से कहीं अधिक चिन्ता है। अगर हम एक कदम उनकी ओर बढ़ते हैं, तो वे हमारी ओर बीस कदम चले आते हैं। अगर हम अपने गुरु की सेवा और भक्ति नहीं करते, तो हम भ्रम और माया के ग़ुलाम बने रहते हैं और आवागमन के चक्र में घूमते रहते हैं :

बिनु सतिगुर सेवे जीअ के बंधना जेते करम कमाहि ।।
बिनु सतिगुर सेवे ठवर न पावही
मरि जंमहि आवहि जाहि ।।
बिनु सतिगुर सेवे फिका बोलणा
नामु न वसै मनि आइ ।।
नानक बिनु सतिगुर सेवे जमपुरि बधे ।।
मारीअहि मुहि कालै उठि जाहि ।।(आदि ग्रन्थ, पृ. ५५२)

(सतगुरु की सेवा के बिना तू जो भी कर्म करता है, वे सब आत्मा के लिये बन्धन हैं। सतगुरु की सेवा के बिना मनुष्य का कोई ठिकाना नहीं है, वह बार-बार जन्मता और मरता है तथा संसार में आता और जाता रहता है। सतगुरु की सेवा के बग़ैर सब बोल-चाल फीका है और नाम मन में वास नहीं करता। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि सतगुरु की सेवा के बग़ैर जीव यमदूतों के डण्डे सहते हैं तथा (इस संसार से) काला मुँह लेकर बिदा होते हैं।)

सतगुरु काल, धर्मराज तथा यमदूतों की सीमा से परे हैं और इसलिये जो सतगुरु के भक्त होते हैं वे भी उनके साथ उस उच्च रूहानी मण्डल में आ जाते हैं, जहाँ काल और यमदूतों की पहुँच नहीं है। वह सब से ऊँचा रूहानी देश सचखण्ड है, जहाँ पहुँचने पर गुरुमुख शिष्य अनन्त आनन्द और परम पद प्राप्त कर लेता है। वह उस शुद्ध चेतन अवस्था में अमर हो जाता है और फिर उसे वापस जन्म-मरण के चक्कर में नहीं आना पड़ता। यह जन्म-मरण का चक्कर काल या ब्रह्म के इस देश में चौरासी लाख योनियों में होता रहता है। पर हमारा सच्चा घर सचखण्ड है, जो प्रलय और विनाश से परे है। वहाँ हमारी पहुँच एक ऐसे गुरु की भक्ति के द्वारा ही हो सकती है जो कि स्वयं शब्द और परमात्मा के साथ एक हो गये हैं तथा हमें भी उसी शब्द के अभ्यास का मार्ग सिखाते हैं। परन्तु गुरु की भक्ति बड़ी कठिन है :

सतगुर की सेवा गाखड़ी, सिरु दीजै आपु गवाइ ॥
सबदि मिलहि ता हरि मिलै, सेवा पवै सभ थाइ ॥

(सिरी रागु म. ३, पृ. २७)

(सतगुरु की सेवा बड़ी कठिन है, इसमें अपने सिर को भेंट चढ़ाना और अपने आप को खो देना पड़ता है। जब मनुष्य को शब्द मिल जाता है तब वह परमात्मा को भी पा लेता है और उसकी सब सेवा सार्थक होती है।)

हमें अपने मन को सतगुरु के नियन्त्रण या कन्ट्रोल में रख कर सब प्रकार की सेवा करनी चाहिये :

मनु बेचै सतिगुर कै पासि ॥
तिसु सेवक के कारज रासि ॥

(आदि ग्रन्थ, म. ५. पृ. २८६)

(जो मनुष्य अपने मन को सतगुरु के हाथों बेच देता है, उसके सभी कार्य पूरे हो जाते हैं।)

सतगुरु की सही प्रकार से सेवा करना कठिन है। सेवा चार प्रकार की होती है : (१) धन की सेवा—यह सेवा खासकर धनी लोगों के लिये है, पर वैसे सब कोई इसे कर सकते हैं। हमें अपनी सारी धन-दौलत को अपनी न समझ कर गुरु की समझना चाहिये। (२) तन की सेवा—यह सेवा खासकर तन्दुरुस्त और मज़बूत लोगों के लिये है, लेकिन हरएक मनुष्य को जहाँ तक बन सके यह सेवा करनी चाहिये। (३) मन की सेवा—का मतलब है रात-दिन हर समय अपने गुरु को याद करना। यह काम सभी लोग आसानी से कर

सकते हैं। पर, संसारी लोग, जो कई प्रकार की चिन्ता और फ़िक्र में पड़े रहते हैं, इस सेवा की करने में कठिनाई महसूस करते हैं। (४) आत्मा या सुरत की सेवा—इस सेवा का मतलब है लगन पूर्वक शब्द का अभ्यास करना और अपनी आत्मा को गुरु के सच्चे स्वरूप—शब्द—में लीन कर देना। यह सब से उत्तम तथा ऊँची सेवा है। और सब सेवायें हमें सुरत या आत्मा की सेवा करने के योग्य बनाती हैं।

हर तरह से गुरु की सेवा करना चाहिये। गुरु का असली स्वरूप शब्द है और मनुष्य की असलियत आत्मा है। इसलिये, आत्मा से शब्द की सेवा (अभ्यास), गुरु की सब से ऊँची सेवा है। बहुत कम लोग ही यह सेवा कर सकते हैं :

सेवा सुरति न जाना काई
तुम करहु दइआ किरसाइणा ॥
(मारू म. ५, पृ. १०७८)

(मैं सुरत-शब्द की सेवा करना नहीं जानता। हे दयामय दाता ! तू मुझ पर कृपा कर।)

भरमि न भूलहु सतिगुर सेवहु
मनु राखहु एक ठाई ॥
(रामकली म. ३, पृ. ९०९)

(भ्रम में मत भूलो, सतगुरु की सेवा करो और मन को एकाग्र रखो।)

हमें अपने मन को तीसरे तिल में एकाग्र करना है और सूक्ष्म मण्डलों में तथा उनसे ऊपर जाने से पहले, हमें अपनी

चेतन सत्ता को इसी केन्द्र पर इकट्ठा करना है। अगर हम सतगुरु की सेवा और भक्ति नहीं करेंगे, उससे प्यार नहीं करेंगे, तो हम मन और माया के भ्रम में पड़े रहेंगे और हक़ीक़त का ज्ञान प्राप्त न कर सकेंगे। हमारा मन ज़्यादातर संसार में फैला हुआ रहता है। जब तक हम उसे तीसरे तिल में एकत्रित नहीं करेंगे, तब तक हम सत्य और हक़ीक़त को नहीं जान सकेंगे। गुरु के मनुष्य रूप की सेवा करने से हमारा मन शुद्ध होता है, अहंकार दूर होता है और हम मन को अन्तर में, तीसरे तिल पर एकाग्र करने में सफल होते हैं। इस प्रकार, सतगुरु की सेवा और भक्ति के द्वारा ही हम अपने अन्तर में जाने और सचखण्ड की सहज अवस्था में परमात्मा को पा लेने में सफल हो सकेंगे :

सतिगुर सेवे ता सहज धुनि उपजै
गति मति तद ही पाए ॥

(सोरठि म. ३, पृ. ६०४)

(सतगुरु की सेवा से अन्दर सहज की धुन जाग उठती है और तभी सच्ची मुक्ति मिलती है।)

सचखण्ड में, जो हमारा असली और सच्चा घर है—सहज अवस्था मिलती है। सहज की प्राप्ति से हमें पूर्ण प्रेम, पूर्ण ज्ञान तथा सच्चा आनन्द प्राप्त होता है। इसलिये अपने जीवन में हमारी सब से बड़ी चिन्ता अपने सतगुरु की यथा-शक्ति सेवा करना होनी चाहिये।

गुरु के मनुष्य स्वरूप की भक्ति, उसके सच्चे शाश्वत स्वरूप (अर्थात परमात्मा) से मिलाप पाने के लिये अत्यन्त आवश्यक है :

हरि सचा गुर भगती पाईऐ
सहजे मंनि वसावणिआ ॥

(आदि ग्रन्थ म. ३, पृ. ११६)

(अपने गुरु की भक्ति के द्वारा ही सच्चा मालिक मिलता है, सहज अवस्था में वह मन में पूरी तरह से बस जाता है।)

अपनी 'इच्छा' को सतगुरु की चेतन बुद्धि और मौज पर न्योछावर करके, हमें पूर्ण विश्वास और भक्ति के साथ उनके हुक्म का पालन करना चाहिये। तभी सतगुरु और उनकी प्यारी संगत की सेवा कारगर होगी तथा दिव्य आत्मिक-ज्ञान और आनन्द का फल प्रदान करेगी। सतगुरु ही हमें सच्चे नाम के अभ्यास की रीति सिखाते हैं और अन्त में परमपिता परमात्मा के साथ हमारा मिलाप करा देते हैं। जो सतगुरु की भक्ति और उनके साथ प्रेम करते हैं, वे वास्तव में बड़े भाग्यशाली हैं :

गुरमुखि नामु धिआईऐ मनमुखि बूझ न पाइ ॥
गुरमुखि सदा मुख ऊजले हरि वसिआ मनि आइ ॥
सहजे ही सुखु पाईऐ सहजे रहै समाइ ॥
भाई रे दासनिदासा होइ ॥
गुरु की सेवा गुर भगति है विरला पाए कोइ ॥

(आदि ग्रन्थ म. ३, पृ. ६६)

(गुरुमुख के द्वारा दिये हुए नाम का ध्यान करो, मनमुख या दुनियादार तो उसको जाना भी नहीं जा सकता। गुरुमुख का मुख सदा उज्ज्वल रहता है, क्योंकि उसके मन में सदा परमात्मा निवास करता है। गुरुमुख सहज अवस्था का सुख प्राप्त करता है और सहज में ही लीन रहता है। हे भाई! तू गुरुमुखों के दास का भी दास बन जा। गुरु की सेवा ही गुरु की भक्ति है, पर यह सेवा किसी बिरले को ही प्राप्त होती है।)

पूर्ण गुरु की प्राप्ति और उनके द्वारा अपनी संगत में शरीक कर लिया जाना हमारे जीवन में सब से बड़े सौभाग्य की बात है।

गुरु अत्यन्त गौरवशाली और महान हैं। उनकी सेवा अति कठिन है। आत्मा का शब्द (जो गुरु का सच्चा और सार-रूप है) में समा जाना ही गुरु की सब से बड़ी सेवा है। पर यह सेवा या भक्ति बड़ी कठिन है। ब्रह्मा और शिव जैसे देवता भी यह सेवा न कर सके :

गुर की भगति करहि किआ प्राणी ।।
ब्रहमै इंद्र महेसि न जाणी ।।

(आदि ग्रन्थ म. १, १०३२)

(साधारण मनुष्य गुरु की क्या सेवा कर सकता है? ब्रह्मा, शिव और इन्द्र को भी इस सेवा का पता नहीं।)

इसका कारण यह है कि इन देवताओं को शब्द का मार्ग

नहीं मिला । इसलिये हमारी आन्तरिक आँख को खोलने वाली इस उत्तम सेवा और भक्ति का उनको पता ही नहीं :

हम अंधुले अंध बिखै बिखु राते किउ चालह गुर चाली ॥
सतगुरु दइआ करे सुखदाता हम लावै आपन पाली ॥१॥
गुरसिख मीत चलहु गुर चाली ॥
जो गुरु कहै सोई भल मानहु हरि हरि कथा निराली ॥१॥
हरि के संत सुणहु जन भाई गुरु सेविहु बेगि बेगाली ॥
सतगुरु सेवि खरचु हरि बाधहु
मत जाणहु आजु कि काल्हि ॥२॥

(आदि ग्रन्थ म. ४, पृ. ६६७)

(सांसारिक मोह-माया के विष में डूब कर हम अन्धे हो चुके हैं। हम गुरु के बताये हुए मार्ग पर कैसे चल सकते हैं ? अगर सुख के दाता, हमारे सतगुरु की दया होगी तो वे हमें अपनी शरण में ले लेंगे। हे मेरे गुरुभाइयो ! गुरु के बताए हुए मार्ग पर चलो । गुरु जो भी हुक्म दें उसमें अपनी भलाई मानो । परमात्मा की बात ही निराली है। हे भाइओ ! जितनी जल्दी हो सके तुम गुरु की सेवा में लग जाओ । सतगुरु की सेवा ही तुम्हारा असली धन है जो साथ जायेगा । कोई नहीं जानता कि आज या कल, कब हमारा बुलावा आ जाये ।)

गुरु की सेवा तो बहुत ही बड़ी चीज़ है, पर गुरु के भक्तों तक की सेवा भी कुछ कम नहीं है :

तिसु गुरसिख कउ हउ सदा नमसकारी ॥
जो गुर कै भाणै गुरसिखु चलिआ ॥

(आदि ग्रन्थ म. ३, पृ. ५९३)

(मैं गुरु के उस शिष्य को सदा नमस्कार करता हूँ जो हरदम गुरु के भाणे में चलता है ।)

मन मेरे सतिगुर कै भाणै चलु ॥
निज घरि वसहि अंमृतु पीवहि
ता सुख लहहि महलु ॥ (सिरी रागु म. ३, पृ. ३७)

(हे मेरे मन ! तू सतगुरु के भाणे या मौज में चल, तभी तू अपने सच्चे घर में निवास करेगा, अमृत का पान करेगा और मालिक के महल में निवास का आनन्द प्राप्त करेगा ।)

हम नासमझ और अज्ञानी हैं, सतगुरु पूर्ण ज्ञान के मालिक हैं । हमें अपनी बुद्धि को उनके दिव्य-ज्ञान के अधीन रखना चाहिये । वे जो कुछ भी करते हैं, हमारी भलाई के लिये ही करते हैं :

जो किछु करे सो भला करि मानीऐ
हिकमति हुकम चुकाईऐ ॥
जाकै प्रेमि पदारथु पाईऐ तउ चरणी चित लाईऐ ॥
सहु कहै सो कीजै तनु मनो दीजै ऐसा परमलु लाईऐ ॥
एव कहहि सोहागणी भैणे इनी बाती सहु पाईऐ ॥

(तिलंग म. १, पृ. ७२२)

(जो कुछ सतगुरु करते हैं उसमें अपनी भलाई समझ

और अपनी बुद्धि व चतुराई को अलग हटा दे। जिन्होंने तुझे प्रेम की दौलत दी है उनके चरणों में अपना चित्त लगाये रख। सतगुरु स्वामी जो भी हुक्म दें, उसका पालन कर। तन-मन की भेंट चढ़ा दे और अपने आप को उनके रंग में रंग ले। सुहागिनी बहनें (वे आत्माएँ जो अन्दर परमात्मा को प्राप्त कर चुकी हैं) यही कहती हैं कि हे बहन ! इन्हीं बातों से परमात्मा रूपी पति को पाया जा सकता है।)

अपने प्यारे सतगुरु की झिड़कियाँ भी हमें मीठी लगती हैं :

जे गुरु झिड़के त मीठा लागै जे बखसे त गुर वडिआई ॥
गुरमुखि बोलहि सो थाइ पाए मनमुखि किछु थाइ न पाई ॥
पाला ककरु बरफ वरसै गुरसिख गुर देखण जाई ॥
(सूही अस्टपदीआँ, म. ४, पृ. ७५८)

(अगर सतगुरु झिड़की देते हैं तो वह मुझे मीठी लगती है, और अगर वे (मेरे दोषों के लिये) मुझे माफ़ कर देते हैं, तो यह उनकी उदारता और महानता है। गुरुमुख जो भी बोलते हैं, परमात्मा उसे मंज़ूर करता है। पर मनमुख या संसारियों की बात वहाँ नहीं चलती। बर्फ़ गिरता हो, आंधी और तूफान आ रहे हों, पर गुरु का प्रेमी शिष्य अपने प्यारे सतगुरु के दर्शन के लिये जाने से नहीं रुकता।)

गुरु तथा उसके सेवक के बीच ऐसी ही गाढ़ी प्रीति होती है। गुरु के चेतन आत्मिक-प्रभाव के बिना हमारे मन

में सच्ची प्रीति और भक्ति पैदा नहीं होती और अहंकार का पर्दा नहीं हटता । गुरु की सेवा और भक्ति हमारे अहंकार और 'मैं-मेरी' की भावना का नाश कर सकती है :

विनु गुर प्रीति न ऊपजै हउमै मैलु न जाइ ।।

(आदि ग्रन्थ, म. १, पृ. ६०)

केवल पूरे गुरु के द्वारा ही हमारे अन्तर में सच्चा प्रेम और असली भक्ति जाग्रत की जा सकती है । सांसारिक प्रेम हमें मोह-माया के जाल में और अधिक फँसा देता है ।

प्रेम का असली सार अनहद शब्द है और केवल सतगुरु ही इसे हमारे अन्दर जगा सकते हैं । अदृश्य ईश्वर तथा अन्य देवी-देवताओं से प्रेम और भक्ति करना, हमारे मन की भूल तथा एक व्यर्थ धारणा है :

होरु कितै भगति न होवई बिनु सतिगुर के उपदेस ।।

(सिरी रागु म. १, पृ. २२)

(सतगुरु के बताये मार्ग के सिवाय और किसी भी प्रकार से भक्ति नहीं हो सकती ।)

केवल पूरे गुरु ही, हमारी आत्मा को शब्द या नाम के साथ जोड़कर, सच्चा उपदेश देते हैं । परमात्मा का यह सच्चा नाम ही हमारे अन्दर सच्ची भक्ति पैदा करता है । यह नाम हमें केवल गुरु से ही मिलता है, इसलिये गुरु के बिना सच्ची भक्ति हो नहीं सकती :

बिनु सतिगुर भगति न होवई नामि न लगै पिआरु ॥
जन नानक नामु आराधिआ गुर कै हेति पिआरि ॥
(सलोक वाराँ ते वधीक म. ३, पृ. १४१७)

(सतगुरु के बिना न भक्ति होती है और न नाम के साथ प्रेम ही जाग्रत होता है । गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि अपने गुरु के साथ प्यार और भक्ति के द्वारा ही उन्होंने नाम का अभ्यास किया है ।)

परमात्मा की प्राप्ति केवल गुरु-भक्ति के द्वारा ही हो सकती है । पहले गुरु के देह-स्वरूप की भक्ति की जाती है और आगे चल कर उनके परम चेतन शब्द-स्वरूप की । जब तक हम गुरु के देह-स्वरूप से प्यार नहीं करेंगे तब तक उनके शब्द-स्वरूप तक नहीं पहुँच सकेंगे । इसलिये गुरु या गुरुमुख के देह-स्वरूप की हमें निरन्तर सेवा और भक्ति करनी चाहिये :

नानक ते हरि दरि पैन्हाइआ मेरी जिंदुड़ीए ॥
जो गुरमुखि भगति मनु लावै राम ॥
(आदि ग्रन्थ म. ४, पृ. ५४०)

(परमात्मा के दरबार में केवल उनका ही स्वागत होता है जो अपने मन को गुरुमुख की भक्ति में अर्पित कर देते हैं ।)

गुरुमुख वह प्रेमी सेवक है जो सचखण्ड में पहुँच कर सत्पुरुष या निरंकार को पहचान चुका है और गुरु तथा परमात्मा में लीन होकर उनके साथ एक हो गया है । अनहद

शब्द या नाम के अपने अभ्यास के समय हमें गुरु के स्वरूप का ध्यान करना चाहिये, क्योंकि वे सत्य व हक़ीक़त के रूप हैं और उनका शरीर इस संसार में मालिक का ज़हूर है अर्थात उनके स्वरूप में परमात्मा स्वयं देह धर कर प्रकट हुए हैं।

अकाल मूरति है साध संतन की ठाहर नीकी धिआन कउ ॥
(सारंग म. ५, पृ. १२०८)

(सन्तों का स्वरूप परमपिता परमात्मा का रूप होता है, अपने ध्यान को एकाग्र करने के लिये उनका स्वरूप ही सबसे उत्तम स्थान है।)

अगर हम गुरु के नेत्रों, ललाट और मुख का ध्यान करेंगे तो हमारा मन तीसरे तिल में स्थिर हो जायेगा और तब हम अनहद शब्द की मधुर धुन को पकड़ कर, उसके सहारे सूक्ष्म आत्मिक मण्डलों में जा सकेंगे :

सतिगुर की मूरति हिरदै बसाए
जो इछै सोई फलु पाए ॥ (धनासरी म. १, पृ. ६६१)

सतिगुरु ही सब पदार्थों के दाता हैं :

मन महि सतगुर धिआनु धरा ॥
दृढ़िओ गिआनु मंत्रु हरि नामा प्रभ जीउ मइआ करा ॥
(जैतसरी म. ५, पृ. ७०१)

(अपने मन में मैंने सतगुरु के स्वरूप का ध्यान किया, परमात्मा के नाम रूपी मन्त्र के द्वारा मेरे अन्तर में सच्चा ज्ञान जाग उठा। परमात्मा ने मुझ पर अपार दया की है।)

जिन पर परमात्मा की दया होती है, केवल वे ही अन्तर में सतगुरु के स्वरूप के ध्यान का अभ्यास करते हैं। अगर हम अपने अन्दर सतगुरु की प्रीति और भक्ति की भावना को यत्नपूर्वक पालते हैं; तो सच में यह परमात्मा की अपार कृपा का ही फल है।

जिस प्रकार किसी सीढ़ी, जीने या लिफ़्ट के बग़ैर हम किसी मकान की ऊपर की मंज़िलों में नहीं जा सकते, ठीक उसी प्रकार, गुरु-भक्ति रूपी आध्यात्मिक सीढ़ी के बिना हम परम-पिता के महल में नहीं पहुँच सकते :

बिनु पउड़ी गड़ि किउ चड़उ गुर हरि धिआन निहाल ॥
गुरु पउड़ी बेड़ी गुरू गुरु तुलहा हरि नाउ ॥

(आदि ग्रन्थ म. १, पृ. १७)

(सीढ़ी या पौड़ी के बिना तुम गढ़ या किले के ऊपर कैसे चढ़ सकते हो ? गुरु, जो स्वयं परमातमा है, के ध्यान से ही सफलता मिल सकती है। गुरु ही सीढ़ी है, गुरु ही नाव है और गुरु ही परमात्मा के नाम का सच्चा जहाज़ है।)

परमात्मा का नाम या अनहद शब्द ही जहाज़ है। पर यह शब्द गुरु का असली रूप है। इस प्रकार, गुरु ही जहाज़ है और गुरु ही (अपने बाहरी मनुष्य स्वरूप में) उस जहाज़ के कर्णधार या कप्तान हैं। उनके सभी शिष्य उस जहाज़ के यात्री हैं। कप्तान या कर्णधार के रूप में गुरु इस जहाज़ को पूरी सँभाल के साथ, संसार के माया रूपी सागर से पार ले

जाते हैं। गुरु की दया से ही हम शब्द को पकड़ कर आन्तरिक आत्मिक-मण्डलों में प्रवेश पा सकते हैं :

गुरमति बाजै सबदु अनाहदु गुरमति मनूआ गावै ॥
वडभागी गुर दरसनु पाइआ धंनु धंनु गुर लिव लावै ॥
गुरमुखि हरि लिव लावै ॥ १ ॥ रहाउ ॥
हमरा ठाकुर सतिगुरु पूरा मनु गुर की कार कमावै ॥
हम मलि मलि धोवह पाव गुरु के
जो हरि हरि कथा सुनावै ॥ २ ॥

(आदि ग्रन्थ म. ४, पृ. १७२)

(गुरु के उपदेश से ही हमारे अन्तर में अनहद शब्द गूँजता है और गुरुमत पर चल कर हमारा मन उसकी धुन में लीन होता है। बड़े भाग्य से मुझे गुरु के दर्शन प्राप्त हुए हैं। वे सचमुच धन्य हैं जो गुरु से प्यार करते हैं। गुरुमुख ही परमात्मा की सच्ची भक्ति कर सकते हैं। पूरे सतिगुरु ही मेरे परमात्मा हैं और मेरा मन उन्हीं की सेवा करता है। मेरे सतगुरु मुझे परमात्मा के बारे में बतलाते हैं। मैं उनके चरणों को मल-मल कर धोता और पखारता हूँ।)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस भू-मण्डल पर सतगुरु सब से महान और ऊँची हस्ती हैं और ऐसे महान व्यक्ति के दर्शन पाना, मनुष्य के लिये बड़े ही सौभाग्य की बात है :

वडभागी गुर दरसनु पाइआ, धनु धनु सतिगुरु हमारा ॥

(वडहंसु म. ४, पृ. ५७२)

हम बार-बार यही कहेंगे कि सतगुरु की प्राप्ति और उनके द्वारा शिष्य के रूप में अपनाया जाना, बड़े ही सौभाग्य की बात है। इसके बाद शिष्य, गुरु-भक्ति और नाम के अभ्यास के द्वारा, अपनी आत्मा को अपने अन्दर सूक्ष्म-मण्डलों में ले जाता है, जहाँ उसे सतगुरु के सूक्ष्म नूरी स्वरूप के दर्शन होते हैं। इस दर्शन से उसका मन निर्मल होता है और गुरु तथा शब्द के प्रति उसके अन्तर में तीव्र भक्ति जाग उठती है।

कोई भी धार्मिक-क्रियाएँ, दान-पुण्य या तप-संयम ऐसी गुरु-भक्ति की बराबरी नहीं कर सकते। परमात्मा के दर्शन तथा सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिये, ज्ञान-योग, कर्म-योग, तपस्या और ऐसे अन्य साधन, भक्ति-मार्ग के समान सहज और कारगर नहीं हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सच्चा दिव्य ज्ञान गुरु-भक्ति का ही फल है। सतगुरु का दर्शन मात्र हमारे अनेक पापों को नष्ट कर देता है:

दरसनु भेटत पाप सभि नासहि हरि सिउ देइ मिलाई ॥१॥
मेरा गुरु परमेसरु सुखदाई ॥
पारब्रहम का नामु दृढ़ाए अंते होइ सखाई ॥१॥ रहाउ ॥
सगल सुख का डेरा भंना संत धूरि मुखि लाई ॥२॥

(रामकली म. ५, पृ. ९१५)

(हे मेरे सतगुरु! आपके दर्शन से मेरे सभी पाप धुल

जाते हैं और परमात्मा का मिलाप प्राप्त होता है। मेरे गुरु परमेश्वर हैं, सभी सुखों के दाता हैं, वे हमारे अन्तर में पारब्रह्म का नाम दृढ़ करते हैं तथा हमारे अन्त समय में सहायक होते हैं। सतगुरु के चरणों की धूलि को अपने मस्तक पर लगाकर मैंने सभी दुःखों के समूह को भंग कर दिया है।)

हउ आकल बिकल भई गुर देखे हउ लोट पोट होइ पईआ ॥

(बिलावल म. ४, पृ. ८३६)

(मैं अपने को ज्ञानी समझता था, लेकिन गुरु के दर्शन के बाद मेरी सब बुद्धि और चतुराई जाती रही, मैं उनके दर्शन के आनन्द में विभोर हो गया।)

गुरु का दर्शन, प्रेमी शिष्यों को मुग्ध कर देता है लेकिन हमारे अन्दर, तीसरे तिल में, गुरु का सूक्ष्म नूरी स्वरूप और भी आकर्षक होता है कि उसकी दिव्य कान्ति को देखकर शिष्य आत्मिक-प्रेम और आनन्द में अपनी सुध-बुध खो बैठता है। अपनी रूहानी चढ़ाई में आत्मा जितनी ज़्यादा ऊपर जाती है, उसका रूप भी उतना ही ज़्यादा सूक्ष्म और शुद्ध होता जाता है तथा गुरु का स्वरूप भी और अधिक ज्योतिर्मय और आकर्षक होता जाता है। आत्मा जब तीसरे तिल को पार करती है तो सब से पहले गुरु अपने सूक्ष्म नूरी स्वरूप में मिलते हैं। गुरु के नूरी स्वरूप के दर्शन से शिष्य के अन्तर में इतना तीव्र प्रेम और गहरी भक्ति जाग उठती है कि उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं होता :

अंदरि सचा नेहु लाइआ प्रीतम आपणै ॥
तनु मनु होइ निहालु जा गुरु देखा साम्हणै ॥
(आदि ग्रन्थ म. ४, पृ. ७५८)

(अपने अन्दर में मैंने प्यारे सतगुरु के लिये सच्चा प्रेम पैदा कर लिया है। जब मेरे सामने गुरु का स्वरूप आ जाता है, तब मेरा तन और मन आनन्द में फूला नहीं समाता।)

गुरु हमें परमपिता का सन्देश देते हैं :
सो धंनु गुरू साबासि है हरि देह सनेहा ॥
हउ वेखि वेखि गुरु विगसिआ गुर सतिगुर देहा ॥
(तिलंग म. ४, पृ. ७२६)

(हे सतगुरु, आप महान हैं, धन्य हैं, जो हमें परमात्मा का सन्देश देते हैं। सतगुरु के देह-स्वरूप के दर्शन से मेरी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहता।)

गुरु-परायण शिष्य अपने सतगुरु से बहुत प्रेम करता है और जब वह अपने गुरु के देह-स्वरूप के दर्शन करता है, तब उसका मन आनन्द-विभोर हो जाता है।

गुरु बाहर से मनुष्य होते हुए भी अन्तर में परमात्मा के समान हैं। अगर कोई मनुष्य हमारे प्रेम और भक्ति के योग्य है तो वह सतगुरु हैं, क्योंकि वह इस संसार में सब से श्रेष्ठ व्यक्ति है। जिन्होंने आवागमन के चक्र से बचाने वाले पूरे गुरु की तलाश नहीं की, उनका मनुष्य-जीवन व्यर्थ है :

जिनी दरसनु जिनी दरसनु सतिगुर पुरख न पाइआ राम ।।
तिन निहफलु तिन निहफलु जनमु सभु बृथा गवाइआ राम ।।
(वडहंस म. ४, पृ. ५७४)

(जो भी सतगुरु के दर्शन न कर सके, सतगुरु को न देख सके, उनका जीवन निष्फल गया, उन्होंने अपना मनुष्य-जन्म व्यर्थ गँवा दिया ।)

जिन लोगों को सतगुरु के दीदार की एक झलक भी न मिली, वे इस संसार में बड़े भाग्यहीन हैं, क्योंकि वे आवा-गमन के चक्र में फँसे रहेंगे । सन्तों के वचन हैं कि अगर किसी ने प्रेम-भाव के साथ, अपने जीवन में सतगुरु के एक बार भी दर्शन कर लिये; तो साधारण दिखाई देने वाली इस घटना का इतना बड़ा लाभ होगा कि उसका अगला जन्म निचली योनियों में नहीं होगा, उसे मनुष्य-जन्म ही मिलेगा ।

प्रेमी शिष्य अपने गुरु के दर्शन के बिना ज़िन्दा नहीं रह सकता । गुरु ही उसके जीवन के सहारे हैं, उसके प्राणों के आधार हैं । हर मुसीबत और कठिनाई के होते हुए भी वह अपने गुरु के दर्शन के लिये अवश्य जायेगा :

झखड़ु झागी मीहु वरसै, भी गुरु देखण जाई ।।
समुंदु सागरु होवै बहु खारा, गुरसिखु लंघि गुर पहि जाई ।।
जिउ प्राणी जल बिनु है मरता
तिउ सिखु गुर बिनु मरि जाई ।।
जिउ धरती सोभ करे जलु बरसै
तिउ सिखु गुर मिलि विगसाई ।।

सेवक का होइ सेवकु वरता करि करि बिनउ बुलाई ॥
नानक की बिनती हरि पहि गुर मिलि गुर सुखु पाई ॥
(सूही असटपदीआ म. ४, पृ. ७५७)

(घनघोर वर्षा, बर्फ, आंधी और तूफ़ान में भी (प्रेमी शिष्य) अपने गुरु के दर्शन के लिये जाता है। समुद्र कितना भी खारा और गहरा क्यों न हो, गुरुमुख शिष्य गुरु के दर्शन के लिये उसे पार कर जाता है। जिस प्रकार जल के बिना प्राणी मर जाते हैं, उसी प्रकार गुरु के दर्शन के बिना शिष्य ज़िन्दा नहीं रह सकता। जिस प्रकार वर्षा होने पर धरती हरियाली से सुशोभित हो जाती है, उसी प्रकार गुरु से मिल कर शिष्य खुशी में फूला नहीं समाता। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि हे परमात्मा! मैं तेरे दासों का दास होकर रहूँ और सदा विनयपूर्वक तुझे पुकारता रहूँ। तुझ से मेरी यही प्रार्थना है कि मुझे सतगुरु का मिलाप प्रदान कर ताकि उनसे सच्चा सुख पा सकूं।)

गुरु सच्चे सुख व आनन्द, असली आत्मिक-ज्ञान तथा सब से ऊँचे व निर्मल प्रेम के दाता हैं। अगर हम में विश्वास और भक्ति है तो वे भी अपना दिव्य प्रेम प्रदान करते हैं। सच्चा प्रेम हमेशा पारस्परिक या दोनों ओर से होता है :

गुरसिख प्रीति गुरु मिलै गलाटे ॥
जन नानक प्रीति साध पग चाटे ॥
(आदि ग्रन्थ म. ४, पृ. १६४)

(प्रेम के वश होकर गुरु अपने प्यारे शिष्यों को गले लगाकर मिलते हैं और गुरु नानक साहिब कहते हैं कि शिष्यों का प्यार ऐसा होता है कि वे साध-सन्तों के चरणों को चूमते रहते हैं।)

गुरु अपने प्रेमी शिष्यों को गले से लगाकर मिलते हैं, यह बात ख़ासकर सूक्ष्म आत्मिक मण्डल में तथा उससे ऊपर होती है। पर गुरु के महान व्यक्तित्व के प्रति आदर और भक्ति के साथ, उनके पवित्र चरणों में पड़े रहने में ही शिष्य अपना अहोभाग्य समझता है।

गुरु-परायण शिष्य के लिये गुरु ही उसके परमात्मा हैं, उसके सर्वेसर्वा हैं। वह सदा अपने गुरु के दर्शन तथा उनकी संगति व सेवा के लिये तरसता रहता है :

हरि सतिगुर हरि सतिगुर मेलि
हरि सतिगुर चरण हम भाइआ राम ॥

(आदि ग्रन्थ म. ४, पृ. ५७३)

(सतगुरु परमात्मा हैं, सतगुरु कुल-मालिक हैं। हे प्रभु ! मुझे सतगुरु से मिला दो, मैं उनके चरणों के लिये तरसता रहता हूँ।)

अपनी प्रीति और भक्ति में शिष्य अपना अलग व्यक्तित्व खो देता है और अपने आपको अपने प्यारे सतगुरु में लीन कर देता है। अन्त में शिष्य अपने सतगुरु के स्वरूप में लीन

हो जाते हैं, क्योंकि शब्द उन्हें सतगुरु के साथ एक कर देता है।

गुर समुंदु नदी सभि सिखी......।

(माझ वार सलोक म. १, पृ. १५०)

(गुरु समुद्र है और सब शिष्य नदियां हैं।)

सब नदियां समुद्र में मिलकर समुद्र बन जाती हैं। इसलिये हमें सभी शिष्यों को आदर की दृष्टि से देखना चाहिये। गुरु की तो हमें अत्यन्त गहरी भक्ति तथा अधिक से अधिक सेवा करना चाहिये :

जिनी नामु पछाणिआ तिन विटहु बलि जाउ ॥
आपु छोड़ि चरणी लगा चला तिन कै भाइ ॥
लाहा हरि हरि नाम मिलै सहजे नामि समाइ ॥

(सिरी राग म. ३, पृ. ३०)

(जिन्होंने नाम को पहचान लिया है, उन पर मैं अपने आपको न्योछावर करता हूँ। मैं अपने अहं-भाव को त्याग कर उनके चरणों में पड़ा रहूँगा और उनके हुक्म व उनकी मौज के अनुसार चलूँगा। तब परमात्मा के नाम की दौलत पाकर मैं सहज अवस्था में समा जाऊँगा।)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सहज अवस्था सचखण्ड में प्राप्त होती है। जो नम्र, दीन और गुर-परायण हैं, वे माया और अन्धकार से निकलकर सत्य और हक़ीक़त को पा लेते हैं। वे गुरु की मौज को ही सब कुछ मानते हैं और अपने आपको उनकी मौज पर ही छोड़ देते हैं। ऐसे शिष्यों

को परमात्मा भी अपनाता है :

सतिगुर पग धूरि जिना मुखि लाई ।।
तिन कूड़ तिआगे हरि लिव आई ।।
ते हरि दरगह मुख ऊजल भाई ।।

(गउड़ी गुआरेरी म. ४, पृ. १६५)

(जिन्होंने सतगुरु की चरण-धूलि को अपने मुख पर लगा लिया है, वे भ्रम और माया रूपी कूड़ से ऊपर उठ कर परमात्मा की भक्ति करते हैं और परमात्मा के दरबार में उनका मुख उज्जवल रहता है ।)

हम सतगुरु के बाहर के चरणों की धूलि की भी स्तुति करते हैं, पर सन्तों के चरणों की सच्ची धूलि, जो मन को पवित्र करती है तथा जीव को मुक्ति की ओर ले जाती है, मनुष्य शरीर के अन्दर सूक्ष्म मण्डल में है । उन मण्डलों में, गुरु के चरणों से निकलता हुआ रूहानी नूर ही उनके पवित्र चरणों की धूलि है । गुरु के चरणों की यह धूलि अपने आत्मिक प्रकाश के प्रवाह में हमारी आत्मा को डुबा देती है तथा हमारे पापों और कलुष को धो देती है । यह हमारे अन्दर गुरु (जो अनहद शब्द के मूर्त रूप हैं तथा परमात्मा से अभेद हैं) के लिये सच्चा तथा शुद्ध प्रेम जाग्रत करती है। अन्तर में जितनी अधिक हमारी आत्मा की चढ़ाई होती है, गुरु के प्रति हमारा प्रेम भी उतना ही अधिक गहरा होता जाता है । पर जब हम बाहर मनुष्य-देह में रहते हैं, तब

हमारा सब से अधिक प्यार अपने गुरु के देह-स्वरूप के साथ ही होता है :

अखी काढि धरी चरणा तलि सभ धरती फिरि मत पाई ॥
जे पासि बहालहि ता तुझहि अराधी
जे मारि कढहि भी धिआई ॥
जे लोकु सलाहे ता तेरी उपमा जे निंदै त छोड़ि न जाई ॥
जे तुधु वलि रहै त कोई किहु आखउ
तुधु विसरिऐ मरि जाई ॥
वारि वारि जाई गुर ऊपरि पै पैरी संत मनाई ॥

(सूही असटपदीआं, म. ३, पृ. ७५७)

(हे सतगुरु ! मैं अपनी आँखों को निकाल कर तेरे चरणों में अर्पित करता हूँ । सम्पूर्ण धरती का भ्रमण करके मैंने यह ज्ञान प्राप्त किया है । अगर तू मुझे अपने चरणों में स्थान देता है तो मैं तेरी ही भक्ति करता हूँ और अगर तू मुझे मार और दुत्कार कर बाहर निकाल देता है तो भी तेरी ही आराधना करता रहूँगा । अगर लोग मेरी तारीफ़ करते हैं तो यह तेरी ही प्रशंसा और बड़ाई है और अगर मेरी निन्दा करते हैं तो भी मैं तुझे छोड़कर नहीं जाऊँगा । अगर मैं तेरे साथ रहता हूँ तो इस पर लोग चाहे जो कहें, मैं तुझे नहीं छोड़ूँगा । तेरे बिना तो मैं मर जाऊँगा । हे सतगुरु ! मैं तुझ पर बार-बार बलिहारी जाता हूँ और तुझे प्रसन्न करने के लिये तेरे चरणों में गिरता हूँ ।

सुरत-शब्द योग में, हम पहले अपनी चेतन सत्ता को आँखों के पीछे एकत्रित करते हैं। और फिर सूक्ष्म मण्डल में गुरु के चरणों को पाते हैं। इसलिये हम ऐसा कह सकते हैं कि हम अपनी आँखों को निकाल कर गुरु के चरणों में बिछाते हैं। कभी-कभी यह भी कहा जाता है कि गुरु के चरण हमारी आँखों में समा गये हैं :

विचि अखी गुर पैर धराई ॥ (आदि ग्रन्थ म. ४, पृ. ७५८)

सच्चा प्रेम सदा परस्परिक या दोनों ओर से होता है। अगर किसी मनुष्य का हृदय साफ़ और पवित्र है, तो उसमें औरों का प्रेम अपने आप प्रतिबिम्बित होगा। सन्तों का हृदय अत्यन्त स्वच्छ और निर्मल होता है, इसलिये अगर कोई मनुष्य सन्त या सतगुरु से प्यार करता है तो उसका प्रेम प्रतिबिम्बित होता है, अर्थात सन्त भी उसे प्यार करते हैं। इस प्यारे को पाकर उस मनुष्य का मन और हृदय निर्मल हो जाता है और उसके तथा सतगुरु के बीच पारस्परिक प्यार और एक अटूट रूहानी कशिश पैदा हो जाती है, जो कि अन्त में उसकी आत्मा को सतगुरु में लीन करके परमात्मा (जिसके प्रकट रूप सन्त या सतगुरु होते हैं) के साथ एक कर देती है।

लेकिन इस ऊँचे दरजे के सच्चे और गहरे प्यार का अनुभव बहुत थोड़े लोग ही कर पाते हैं, क्योंकि इस संसार में ऐसे बहुत कम लोग हैं जिनका कि हृदय इतना निर्मल है।

गुरु-भक्ति के द्वारा ही हमारा मन पवित्र होता है और आत्मा आन्तरिक सूक्ष्म मण्डलों में उड़ान भर कर गुरु के नूरी चरणों तक पहुँचने के लायक होती है। इसके बाद ही आन्तरिक आत्मिक कमल खिलता है :

माई गुर चरणी चितु लाईऐ ॥
प्रभु होइ कृपालु कमलु परगासे सदा सदा हरि धिआईऐ ॥
(देव गंधारी म. ५, पृ. ५२८)

(तू गुरु के चरणों में अपनी प्रीति लगाए रख और तभी प्रभु दया करके आन्तरिक कमल खिला देंगे और तू सदा परमात्मा का ध्यान करता रहेगा।)

परमात्मा का ध्यान केवल गुरु-भक्ति के द्वारा ही संभव हो सकता है। कहते हैं कि जिससे हम प्यार करते हैं, आगे चलकर हम उसी का रूप बन जाते हैं। अगर हम जुआरियों से प्यार करेंगे, तो हम भी जुआरी बन जायेंगे, चोरों की संगति में हम भी चोर बन जायेंगे और इसी प्रकार हमारी आसक्ति और संगति अपना फल देती रहेगी। अगर हम भले आदमियों से प्यार करेंगे तो हम भी भले बन जायेंगे। सन्तों से प्यार करने पर हम अवश्य ही उनके समान हो जायेंगे।

गुरु के भक्त और प्रेमी, निरन्तर अपने गुरु को याद करते हैं तथा उनकी अपार दया-मेहर का गुणगान करते रहते हैं। उनको अपने गुरु में विश्वास होता है और वे सदा उन्हीं की याद को अपने मन में बसाये रखते हैं। पर

यह अवस्था केवल परमात्मा की कृपा से ही प्राप्त होती है :

जिन कंउ करतै धुरि लिखि पाई ॥
अनदिनु गुरु गुरु करत विहाई ॥
बिनु सतिगुर को सीझै नाही
गुर चरणी चित लाई हे ॥

(मारू सोहले म. ४, पृ. १०६९)

(परमात्मा ने जिस जीव के भाग में धुर-लेख लिख दिया है, वही दिन-रात गुरु की याद में अपना समय बिताता है। वह गुरु के चरणों के प्रेम में लीन रहता है और सतगुरु के सिवाय उसका और कोई आसरा नहीं होता।)

मनुष्य सांसारिक वस्तुओं में सुख ढूँढता है। लेकिन मन, बुद्धि और इन्द्रियों का सब सुख छिछला और आरज़ी होता है। यह सुख सच्चा नहीं होता, इसमें दुःख और कृत्रिमता की मिलावट होती है। सच्चा और असली सुख आत्मिक-ज्ञान से ही मिल सकता है और यह ज्ञान केवल गुरु-भक्ति के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। यह बात इतनी ज़रूरी और महत्वपूर्ण है कि सन्तों ने इसे बार-बार दोहराया है।

माई चरन गुर मीठे ॥
वडै भागि देवै परमेसरु
कोटि फला दरसन गुर डीठे ॥

(टोडी म. ५, पृ. ७१७)

(गुरु के चरण मीठे हैं। जिन्हें परमात्मा गुरु-चरणों का

वास देते हैं, वे बड़े भाग्यशाली हैं । गुरु के दर्शन से करोड़ों शुभ-कर्मों का फल मिलता है ।)

गुरु एक सुगन्धित फूल के समान हैं, जिनसे अपने आप; स्वाभाविक रूप से चारों ओर रूहानियत की महक फैलती रहती है । जो भी उनके सम्पर्क या तअल्लुक में आते हैं, उन के दिव्य आत्मिक प्रभाव से लाभ उठाते हैं । जो भक्ति और विश्वास के साथ उनका एक बार भी दर्शन कर लेते हैं, उनका अगला जन्म मनुष्य का ही होता है, वे मनुष्य-योनि से नीचे नहीं जा सकते । जिन जीवों को नाम-दान मिल जाता है तथा जो परम चेतन शब्द के साथ जोड़ दिये जाते हैं, उनके उन्दर रूहानी मण्डलों के द्वार खुल जाते हैं और वे हक़ीक़त का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं । हमें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि सच्चा ज्ञान, भक्ति का फल होता है । भक्ति के बिना अहं-भाव का नाश नहीं होता और अहं के नष्ट हुए बगैर परमात्मा के दर्शन नहीं हो सकते ।

भक्ति कई प्रकार की होती है, पर नाम या शब्द की भक्ति सबसे ऊँची है । सच्चे और निर्मल प्रेम का सार शब्द ही है । लेकिन जब तक हम इस संसार में, मनुष्य-देह में है, हमारे लिये सब से ऊँची भक्ति सतगुरु के देह-स्वरूप से प्रेम और उनकी सेवा है । हमारी आत्मा शब्द भक्ति कर सकती है, परन्तु जब तक हमारी आत्मा स्थूल शरीर में है, हमें शब्द के स्थूल रूप, अर्थात् गुरु के देह-स्वरूप, की भक्ति

करनी चाहिये :

चरण साध के धोइ धोई पीउ ॥
अरपि साध कउ अपना जीउ ॥
साध की धूरि करहु इसनानु ॥
साध ऊपरि जाईऐ कुरबानु ॥
(आदि ग्रन्थ म. ५, पृ. २८३)

साध-सन्त बड़ी उच्चकोटि के आध्यात्मिक पुरुष होते हैं और केवल वे ही हमें अनहद शब्द का मार्ग बताकर परमात्मा से मिला सकते हैं। अतएव केवल वे ही हमारे प्यार के योग्य है। साध-सन्तों में सतगुरु सब से श्रेष्ठ होते हैं, क्योंकि सतगुरु वे सन्त हैं जो कि आत्माओं को परमात्मा के पास ले जाने का काम करते हैं। इसलिये वे हमारी अधिक से अधिक भक्ति के अधिकारी हैं, केवल वे ही हमारी पूजा के योग्य हैं। यहाँ तक कि उनके प्रेमी शिष्य भी महान हैं और हमारे आदर तथा विनय के योग्य हैं :

तिसु जन के पग नित पूजीअहि मेरी जिंदुड़ीए
जो मारगि धरम चलेसहि राम ॥
नानकु तिन विटहु वारिआ मेरी जिंदुड़ीए
हरि सुनि हरिनामु मने सहि राम ॥
(आदि ग्रन्थ म. ४, पृ. ४५०)

(उन लोगों के चरणों की सदा पूजा करो, जो कि परमार्थ के मार्ग पर चलते हैं। गुरु नानक साहिब कहते हैं

कि मैं उन लोगों पर अपने आपको न्यौछावर करता हूँ जो परमात्मा के आदेश को मानते हैं और उनके नाम में अटूट विश्वास रखते हैं ।)

एक सच्चा जिज्ञासु सदा पूरे गुरु की तलाश करता रहता है और जब, परमात्मा की कृपा से, वह उन्हें पा लेता है तो अपना तन, मन व आत्मा उन को अर्पण कर के, उनकी और साध-संगत की सेवा करता है । जब गुरु अंगद देव को गुरु नानक साहिब मिल गये, तब वे अपने सब पुराने पूजा-पाठ को छोड़ कर उन्हीं के चरणों में लगे रहे । इसी प्रकार जब गुरु अमरदास जी को अंगद साहिब मिले, तब उन्होंने भी अपनी सब पिछली धार्मिक क्रियाओं को छोड़ दिया और गुरु की भक्ति में लीन हो गये । यही बात दूसरे सन्तों और सतगुरुओं के साथ भी बीती ।

ऐसी भक्ति हमें काल और धर्मराज की सीमा से ऊपर ले आती है । पूरे गुरु के शिष्य को, अपने कर्मों के न्याय के लिये, धर्मराज के दरबार में नहीं जाना पड़ता । उनके कर्मों का हिसाब-किताब उनके अपने सतगुरु के पास रहता है :

मेरा सतिगुरु मेरा सतिगुरु पिआरा
मै गुर बिनु रहणु न जाई राम ।।
हरिनामो हरिनामु देवै, मेरा अंति सखाई राम ।।

(वडहंस म. ४, पृ. ४७३)

(मेरा सतगुरु मुझे प्यारा है । हे परमात्मा ! मैं अपने

सतगुरु के बिना नहीं रह सकता। मेरा सतगुरु मुझे नाम का दान देता है और मेरे अन्त समय में मेरी सहायता करता है।)

मौत के समय संसार का कोई भी इन्सान मदद नहीं कर सकता। यमदूत ज़बरदस्ती आत्मा को अपने साथ ले जाते हैं। पर सच्चे गुरु के शिष्य की बात कुछ और ही होती है। यमदूत को उनके पास आने की हिम्मत नहीं होती। उस समय सतगुरु स्वयं अपने नूरी स्वरूप में आते हैं और अपने शिष्य की आत्मा को शान्ति और आनन्द के उच्च आध्यात्मिक मंडलों में ले जाते हैं। मौत के उस नाज़ुक और कठिन समय में केवल गुरु तथा शब्द की भक्ति ही काम आती है और गुरु के प्रबल रूहानी प्रभाव के कारण काल और उसके दूत दूर ही रहते हैं :

नानक सतिगुरु मिलै मिलाइआ
दूख पराछत काल नसे ॥
(प्रभाती म. १, पृ. १३३२)

(गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि जब सतगुरु मिल जाते हैं तो मनुष्य के सब दुःख दूर हो जाते हैं और काल भी भाग जाता है।)

जब हमें अन्दर सूक्ष्म रूहानी मण्डलों में सतगुरु के दर्शन होते हैं, तब हमारे सब रूहानी और मानसिक दुःख दूर हो जाते हैं। हम पर काल की विरोधी शक्तियों का

अधिकार समाप्त हो जाता है। यह सब गुरु की दया और हमारी सच्ची भक्ति के द्वारा होता है। जो मनुष्य पूरे गुरु के प्रेमी शिष्यों के लिये भी आदर व प्रेम का भाव रखते हैं, वे भी काल के पंजों से बचा लिये जाते हैं :

तुधु सालाहनि तिन्ह धनु पलै
नानक का धनु सोई ॥
जे को जीउ कहै ओन्हा कउ
जम की तलब न होई ॥
(प्रभाती म. १, पृ. १३२८)

(गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि हे परमात्मा ! जो तेरा गुणगान करते हैं, (नाम रूपी) धन उन्हें ही मिलता है। मेरा तो वही सच्चा धन है। जो ऐसे लोगों का आदर और विनय करते हैं, यमदूत उनके पास नहीं आ सकते।)

परमात्मा के गुणगान से यहाँ मतलब शब्द या नाम की कमाई से है। अगर हम अपने सतगुरु की भक्ति और सेवा में लगे रहते हैं, तो काल की कोई भी शक्ति हमारे पास नहीं आ सकती। हमारे सर्वशक्तिमान समर्थ सतगुरु सदा हमारी देख-भाल करते हैं और अन्त समय में हमें यम की पीड़ा और ज़ुल्म से बचाते हैं। गुरु की भक्ति और प्रीति के द्वारा ही हम जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा पा लेते हैं और अन्त में अपने सच्चे घर अर्थात् सचखण्ड पहुँच जाते हैं। यह भक्ति भी हम गुरु की दया-मेहर तथा उनके आत्मिक

प्रभाव के द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं :

सतिगुरु वेपरवाहु सिरंदा
ना जम काणि न छंदा मंदा ।।
जो तिसु सेवे सो अबिनासी
ना तिसु कालु संताई है ।।
(मारू म. १, पृ. १०२४)

(मेरे सतगुरु को न कोई चिन्ता है, न कोई इच्छा है, वे बेपरवाह हैं। वे न तो काल के अधीन हैं और न उन पर किसी तरह का बन्धन है। जो उनकी सेवा करते हैं, वे अमर हो जाते हैं और काल उन्हें नहीं सता सकता।

अगर हम अपने गुरु से प्यार करते हैं और तन-मन से उनकी सेवा तथा भक्ति करते हैं, तो हम गुरु-प्रेम रूपी पंखों के सहारे उड़ कर परम सुख और आनन्द के ऊँचे लोकों में पहुँच जाते हैं। गुरु की सच्ची और लग्न-पूर्वक भक्ति से ही हमारी रक्षा हो सकती हैं। केवल गुरु ही हमारी मदद कर सकते हैं। उनके सिवाय और कोई भी, यहाँ तक कि देवी-देवता भी, हमें काल के जाल से नहीं बचा सकते, क्योंकि ये सब ख़ुद ही भ्रम और भूल में पड़े हुए हैं।

माइआ मोहे देवी सभि देवा ।।
कालु न छोडै बिनु गुर की सेवा ।।
(आदि ग्रन्थ म. १, पृ. २२७)

(माया ने सब देवी-देवताओं को अपने वश में कर रखा है। गुरु की सेवा के बिना काल किसी को नहीं छोड़ता।)

सारा संसार चौरासी के चक्कर में घूम रहा है। मौत के बाद धर्मराज के दरबार में कर्मों का हिसाब होता है तथा कर्मों के अनुसार अगला जन्म दिया जाता है। यही कर्म-सिद्धान्त या कर्मों का कानून है। काल हमारा एक बड़ा ही ख़तरनाक और चालाक दुश्मन है। हमारा बचाव केवल सर्वशक्तिमान, दयानिधि सतगुरु की शरण से ही है! अगर हम पूरे गुरु के चरणों की शरण नहीं लेंगे तो काल हमें निगल जायेगा :

कालु न छोडै बिनु सतिगुर की धीरा ॥

(आदि ग्रन्थ, म. १, पृ. २१)

इसलिये काल की सीमा और जाल से बाहर निकलने के लिये हमें सतगुरु की शरण में आना ही चाहिये। संसार की और कोई ताकत हमें नहीं बचा सकती। आज तक जिन्होंने भी मुक्ति पाई है, पूरे गुरु की अटूट भक्ति व प्रीति के द्वारा तथा गुरु की मौज और हुक्म में रहकर ही पाई है। यह सब के लिये ही अटल नियम या कानून है कि परमात्मा की प्राप्ति पूर्ण सन्त या सतगुरु की भक्ति के द्वारा ही हो सकती है :

अंडज जेरज सेतज उतभुज
सभि वरन रूप जीअ जंत उपईआ ॥
साधू सरणि परै सो उबरै
खत्री ब्राहमणु सूदु वैसु चंडालु चंडईआ ॥

नामा जैंदेउ कंबीरु त्रिलोचनु
अउजाति रविदासु चमिआरु चमईआ ।।
जो जो मिलै साधू जन संगति
धन धंना जटु सैणु मिलिआ हरि दईआ ।।
(बिलावलु म. ४, पृ. ८३५)

(परमात्मा ने चार प्रकार के जीव बनाये हैं : अण्डज (अण्डों से पैदा होने वाले, जैसे पक्षी), जेरज (झिल्ली में लिपटे हुए पैदा होने वाले, जैसे मनुष्य), स्वेदज (मौसम के परिवर्तन से उत्पन्न होने वाले जीव, मच्छर आदि) और उद्-भिज्ज, (पृथ्वी से पैदा होने वाले जीव, पेड़-पौधे, इत्यादि)। इन सब जीवों में मनुष्य सब से ऊँचा है। लेकिन केवल वही मनुष्य मुक्ति पाता है जो सन्तों की शरण लेता है, भले ही वह क्षत्रिय हो, ब्राह्मण हो, शूद्र हो या वैश्य या चाहे किसी नीच से नीच जाति का ही क्यों न हो। नामदेव, जयदेव, कबीर, त्रिलोचन, रविदास चमार, धन्ना जाट, सैन नाई आदि जो भी साध-सन्तों की संगति में आये, वे परमात्मा से मिल कर परमात्मा में ही समा गये।)

यहाँ अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, काले-गोरे, हिन्दू-सिक्ख, ईसाई-मुसलमान, आदि का कोई सवाल नहीं है। यहाँ तो सिर्फ़ गुरु की भक्ति और शब्द की कमाई ही चाहिये। पूरे गुरु की भक्ति ही आत्म-ज्ञान तथा परमात्मा की प्राप्ति की कुन्जी है।

गुरु अपने असली रूप में परमात्मा के बराबर हैं, बल्कि हम कह सकते हैं कि गुरु परमात्मा से भी बड़े हैं; सन्तों ने भी यही कहा है। इस बात के विरोध में यह कहा जा सकता है कि परमात्मा तो सर्वोच्च सत्ता का नाम है और इसीलिये, उस सत्ता से ऊँची कोई भी दूसरी शक्ति नहीं हो सकती। इसके अलावा, जब हम यह कहते हैं कि गुरु परमात्मा के बराबर हैं, तो हम साथ-साथ ही यह कैसे कह सकते हैं कि गुरु परमात्मा से बड़े हैं ? ये दोनों बातें एक साथ ही कहना ठीक मालूम नहीं देता। लेकिन जब सन्तों ने कहा है कि गुरु परमात्मा से बड़े हैं, तो हमें इस बात को समझने की कोशिश करना चाहिये।

जब हम कहते हैं कि गुरु परमात्मा के बराबर हैं तो इस बात से हमारा मतलब है कि गुरु की आत्मा, परमात्मा में लीन होकर उसके साथ एक हो गई है। हम यहाँ दोनों में आन्तरिक सार की तुलना कर रहे हैं। परन्तु जब हम कहते हैं कि गुरु परमात्मा से बड़े हैं, तो हमारा मतलब है कि हमारे मनुष्य जीवन में गुरु परमात्मा से कहीं अधिक हमारे सहायक होते हैं। परमात्मा तो परमात्मा है, कुल-मालिक है। पर गुरु एक साथ ही परमात्मा और मनुष्य दोनों हैं।

हम अभी मनुष्य हैं और परमात्मा को उसके अति सूक्ष्म चेतन रूप में नहीं पा सकते। लेकिन हम गुरु के सम्पर्क में आ सकते हैं, उन्हें छू सकते हैं, उनकी सेवा और भक्ति तथा

उन से प्यार कर सकते हैं, क्योंकि वे बाहर से हमारे जैसे ही मनुष्य हैं। पर साथ ही अन्तर में वे परमात्मा भी हैं। जब हम परमात्मा की परम चेतन आत्मिक अवस्था में पहुँच जाते हैं, तब हम कह सकते हैं कि परमात्मा का मनुष्य रूप (अर्थात गुरु), अपने अन्तिम रूप में परमात्मा से श्रेष्ठ नहीं है। पर ऐसा कहना केवल उन आत्माओं के लिये ही उचित होगा जो कि सचखण्ड के परम चेतन लोक में पहुँच चुकी हैं। इस संसार में गुरु सबसे ऊँची और महान शक्ति है ; वे फरिश्तों, देवी-देवताओं और परमात्मा से भी बड़े हैं। यहाँ तक कि परमपिता परमात्मा भी इस दुनिया के जीवों को अपने पास बुलाने के लिये गुरु के देह-स्वरूप द्वारा ही काम करते हैं। इसलिये हमारा यह कहना उचित है कि इस संसार में मनुष्य के लिये गुरु ही सब से ऊँची हस्ती हैं, वे परमात्मा से भी बड़े हैं। अगर हम ठीक तरह से समझने की कोशिश करें तो यह बात स्पष्ट है। परमात्मा अपने सूक्ष्म रूप में केवल सब से ऊँचे रूहानी मण्डल में ही दिखाई देता है, इस संसार में वह केवल सन्त और सतगुरु के रूप में ही प्रकट होता है। क्योंकि अभी हम मनुष्य चोले में हैं अतएव परमात्मा का मनुष्य रूप ही हमारे लिये सबसे बड़ा और श्रेष्ठ है, यह रूप परमात्मा के रूहानी सूक्ष्म रूप के मुकाबले में, हमारा अधिक सहायक होता है। इसलिये हमारा यह कहना ठीक होगा कि गुरु परमात्मा से बड़े हैं।

गुरु की भक्ति, परमात्मा की ही भक्ति है। हमें अपने सम्पूर्ण प्रेम और भक्ति-भाव को अपने सतगुरु के चरणों में अर्पित करना चाहिये, क्योंकि इससे हमें मुक्ति और परमात्मा का मिलाप प्राप्त होगा। लोग परमात्मा को याद करने की कोशिश करते हैं और कई प्रकार से उसकी भक्ति करते हैं, परमात्मा और मुक्ति की प्राप्ति के लिये वे तीर्थ-यात्रा, देवी-देवताओं की मूर्तियों की पूजा, धर्म-ग्रन्थों का पाठ, यज्ञ, तपस्या आदि अनेक प्रकार के धार्मिक साधन करते हैं। लेकिन अफ़सोस ! वे इस बात को नहीं जानते कि मुक्ति की प्राप्ति और परमात्मा के मिलाप का सही मार्ग पूर्ण गुरु की भक्ति हैं।

गुरु अपनी अपार दया-मेहर से प्रेरित होकर ही हमें नाम देकर अपनी शरण में लेते हैं। इसके बाद, हमें परमात्मा से मिलाने का भार भी वे अपने ऊपर ले लेते हैं। हमें सदा अपने गुरु तथा उनकी अलौकिक दया-मेहर को याद करते रहना चाहिये। वे हमारे स्वामी, एकमात्र रक्षक और मुक्ति दाता हैं :

सिमरि सिमरि सिमरि गुरु अपुना सोइआ मनु जागाई ॥
इकु दानु मंगै नानकु वेचारा हरि दासनि दासु कराई ॥
(सूही असटपदीआ ग. ४, पृ. ७५८)

गुरु को याद कर, याद कर, बार-बार याद कर, तभी तेरा सोया हुआ मन जाग्रत होगा। हे परमात्मा ! यह दीन

नानक तुझ से केवल एक ही दान मांगता है कि तू उसे अपने दासों का भी दास बना ले ।)

श्री गुरु नानकदेव परमात्मा के दासों के भी दास बनना चाहते हैं। यह दीनता व नम्रता का एक आदर्श है, जिस पर अपने जीवन में हम सब को चलना चाहिये । अगर हम इस प्रकार दीन होकर अपने गुरु तथा उनकी प्रेमी संगत की सेवा करेंगे, तो इसमें शक नहीं कि हम, गुरु की कृपा से, परमार्थ के मार्ग और आन्तरिक अनुभव की सीढ़ी पर बढ़ते चलेंगे और अन्त में मुक्ति तथा स्थायी आनन्द के धाम, अपने सच्चे घर (सचखण्ड) में पहुँच जायेंगे । जो भी जीव वहाँ पहुँचता है (और वहाँ वह सिर्फ़ गुरु-भक्ति और अनहद शब्द के अभ्यास के द्वारा ही पहुँच सकता है), उसको दिव्य ज्ञान, परम-आनन्द और सच्चा प्रेम, अपने सम्पूर्ण और निर्मल से निर्मल रूप में प्राप्त होता है । गुरु की भक्ति और यह दृढ़ विश्वास कि उनमें और परमात्मा में कोई भेद नहीं है, हमें हक़ीक़त के सच्चे ज्ञान और आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाता है :

जा कै मनि गुर की परतीति ॥
तिसु जन आवै हरि प्रभु चीति ॥

(आदि ग्रन्थ, म. ५, पृ. २८३)

(जिसके मन में अपने सतगुरु का दृढ़ विश्वास है, उसी के अन्तर में परमात्मा की याद बसती है ।)

हमें ऐसे नेक और महान पुरुष को सेवा और भक्ति करनी चाहिये, जो कि हमें नाम-भक्ति के मार्ग पर लगाते हैं। ऐसे महान पुरुष तो केवल गुरु ही होते हैं :

जन नानक तिसु बलिहारणै
जो आपि जपै अवरा नामु जपाए ॥

(आदि ग्रन्थ, म. ४, पृ. १४०)

(गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि मैं उन पर बलिहारी जाता हूँ जो स्वयं नाम का अभ्यास करते हैं तथा औरों से भी यही अभ्यास करवाते हैं।)

इसी में सतगुरु की कृपा और महानता है ! शब्द-योग के द्वारा वे स्वयं परमात्मा में लीन हो चुके हैं और दूसरों को भी, इस मार्ग का अभ्यास करवा कर, परमात्मा से जोड़ देते हैं।

नाम के अभ्यास के लिये सब से अच्छा समय अमृत-वेला या प्रातःकाल का समय है।

अमृत वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु ॥

(आदि ग्रन्थ, म. १, पृ. २)

(अमृत-वेला में सच्चे नाम का अभ्यास करके इसकी महत्ता का अनुभव करो।)

गुरु-भक्ति हमारे अन्तर में परमात्मा से मिलाप की कामना और विरह जाग्रत करती है ! इसलिये जिस समय भी सत्संगी को भजन-सुमिरन करने की प्रेरणा या उसके

अन्तर में शब्द की कशिश उत्पन्न होती हो, वही समय अभ्यास के लिये ठीक है :

सभे रुती चंगीआ जितु सचे सिउ नेहु ।।

(आदि ग्रन्थ, म. १, पृ. १०१५)

(अगर अन्तर में सच्चे मालिक के लिये प्यार है तो नाम-भक्ति के लिये सभी ऋतुएँ अच्छी हैं ।)

हमारे अन्तर में परमात्मा के लिये प्रेम तभी जाग्रत होता है जब हम ऊँचे आध्यात्मिक मण्डलों में उनके दर्शन करते हैं। केवल गुरु-भक्ति और नाम-भक्ति के द्वारा ही हम उन मण्डलों में रसाई प्राप्त कर सकते हैं। अगर हमारे अन्तर में सतगुरु के प्रति प्रेम और भक्ति नहीं है तो हमारा शब्द का अभ्यास सफल नहीं हो सकता । परमार्थ के मार्ग में गुरु-भक्ति बहुत ज़रूरी और महत्वपूर्ण है । इसके बग़ैर शब्द की प्राप्ति और उसमें लीन हो सकना सम्भव नहीं । जब तक हम सतगुरु के बाहरी मनुष्य रूप की भक्ति नहीं करेंगे, तब तक हम उनके आन्तरिक सूक्ष्म रूप (शब्द या नाम) के साथ नहीं जुड़ सकेंगे :

धनु धनु सतिगुर पुरखु निरंजनु
जितु मिलि हरि नामु धिआई ।।

(आदि ग्रन्थ, म. ४, पृ. ५७३)

(सतगुरु धन्य हैं, वे महान हैं, वे स्वयं परम पुरुष परमात्मा हैं । उनसे मिलकर ही मैं परमात्मा के नाम का अभ्यास कर सकता हूँ ।)

हालांकि वह शब्द हमारे अन्दर लगातार गूंज रहा है, फिर भी हम ख़ुद उसको नहीं पा सकते। केवल गुरु की प्रीति और भक्ति के द्वारा ही हम उस दिव्य धुन को सुन सकते हैं। उस धुन के सम्पर्क से आत्मा अपने स्थूल खोलों को उतारने लगती है और सूक्ष्म होते होते, अन्त में वह परमात्मा में समा जाती है। गुरु हमारी रूहानी ज़िन्दगी के आधार हैं:

गुरु परमेसूरु पूजीऐ मनि तनि लाइ पिआरु ॥
सतिगुरु दाता जीअ का सभ सै देइ आधारु ॥
(आदि ग्रन्थ, म. ५, पृ. ५२)

(तन-मन के साथ गुरु की प्रेम-पूर्वक भक्ति करो। गुरु और परमात्मा एक ही हैं। सतगुरु ही हमारे जीवन-दाता हैं, वे ही सब को आधार देते हैं।)

गुरु परमात्मा के अवतार हैं, वे मनुष्य के रूप में स्वयं परमात्मा हैं। हम उनकी असलियत को नहीं पहचान पाते हैं, क्योंकि हम आध्यात्मिक रूप से अन्धे हैं, हमारी आन्तरिक आँखे, जोकि हक़ीक़त को देख सकती हैं, बन्द हैं। हम बहरे भी हैं, क्योंकि हमारे उन आन्तरिक कानों पर, जो कि दिव्य धुन को सुन सकते हैं, अभी मुहर लगी हुई है। गुरु-भक्ति के द्वारा हमारे ये आन्तरिक आँख-कान खुल सकते हैं। अन्तर के पट खुलने पर ही हम समझ सकेंगे कि गुरु, जो अपने बाहरी रूप में साधारण मनुष्य मालूम देते हैं, अपने अन्तर

में, अपने असली रूप में स्वयं परमात्मा हैं।

गुरु रामदास जी, गुरु अर्जुन साहिब के गुरु थे। गुरु अर्जुन साहिब ने फ़रमाया है कि उनके गुरु वास्तव में परमात्मा हैं, परन्तु बाहर से वे एक साधारण मनुष्य हैं, जिनका नाम रामदास है। अर्थात, गुरु रामदास जो और मनुष्यों के समान ही मनुष्य दिखाई देते हैं, पर अपने सच्चे रूप में वे मनुष्य नहीं, स्वयं परमात्मा हैं। सच में वे परमात्मा हैं, पर केवल उनका नाम ही रामदास है :

हरि आराधि न जाना रे ॥ हरि हरि गुरु गुरु करता रे ॥
हरि जीउ नामु परिओ रामदासु ॥ (आदि ग्रन्थ, म, ५, पृ. ६१२)

(मैं हरि की आराधना करना नहीं जानता। मैं तो केवल 'हरि हरि' और 'गुरु गुरु' की रट लगाता हूँ। हे परमात्मा! तेरा ही नाम आज रामदास है।)

गुरु का मनुष्य रूप परमात्मा का ही ज़हूर है। परमात्मा अपने असली सूक्ष्म रूप में अभी हमारी पहुँच से परे है, इसलिये हम परमात्मा से प्यार नहीं कर सकते। जब तक हम इस स्थूल संसार में साधारण मनुष्य के रूप में हैं, हम परमात्मा से सम्पर्क नहीं साध सकते। लेकिन अगर हम पूर्ण गुरु की सहायता से, शब्द-योग के अभ्यास द्वारा इस शरीर से तथा स्थूल संसार से बाहर निकलना सीख लें और ऊपर के मण्डलों में उड़ चलें, तो वहाँ पर हम परमात्मा के दर्शन कर सकते हैं। तब हम अवश्य परमात्मा से प्यार और उसकी

सेवा कर सकेंगे । परन्तु इस अवस्था को प्राप्त करने से पहले जब तक हम इस स्थूल जगत में हैं, हमें पूर्ण सन्त या सतगुरु की भक्ति और उनसे प्रेम करना चाहियें। वे एक साथ ही मनुष्य और परमात्मा दोनों हैं। इसलिये अगर हम परमात्मा की पूजा करना चाहते हैं तो हमें उसकी पूजा करनें के लिये उसके मनुष्य स्वरूप (अर्थात सतगुरु के देह-स्वरूप) की पूजा करना चाहिये ।

हमारे अन्तर में सतगुरु की प्रीति और भक्ति भी उनकी ही दया-मेहर से पैदा होती है । उनकी कृपा से ही हम, इस संसार में रहते हुए और यहाँ का कारोबार करते हुए भी, परमात्मा को पा सकते हैं :

कहै नानकु गुर परसादी जिता लिव लागी
तिनी विचे माइआ पाइआ ॥ (आदि ग्रन्थ, म. ३, पृ. ९२१)

(गुरु की कृपा से जिनकी लिव लग गई--उन्होंने माया में रहते हुए भी परमात्मा को पा लिया ।)

अगर हम गुरु के हुक्म के मुताबिक रहेंगे तथा शौक और लगन के साथ शब्द का अभ्यास करेंगे, तो हमारी आत्मा ऊँचे रूहानी मण्डलों में जा सकेगी। उस हालत में हम बाहरी रूप से दुनिया के कारोबार में फँसे दिखाई देंगे; पर वास्तव में अपने अन्तर में हम गुरु तथा परमात्मा की भक्ति करते रहेंगे। अगर हम परमात्मा के दर पर गुरु के मार्फ़त जायेंगें तो हमें अपनाया जायेगा :

गुरु गुरु करत सरणि जे आवै
प्रभु आइ मिलै खिनु ढील न पाईआ ।।

(आदि ग्रन्थ, म. ४, पृ. ८३७)

(गुरु के नाम की रट लगाते हुए जो परमात्मा की शरण में जाते हैं, परमात्मा बिना ज़रा भी देर लगाये ख़ुद आकर उनसे मिलता है ।)

अगर हम अपने आप, बग़ैर सतगुरु की सहायता के, परमात्मा का दर्शन करना चाहें तो हम उसको नहीं पा सकते । किन्तु अगर हम सतगुरु की सेवा और भक्ति करते रहते हैं तो हमें अवश्य ही परमात्मा की प्राप्ति होगी । यह विधान या कानून ख़ुद परमात्मा ने ही बनाया है :

कहु नानक प्रभि इहै जनाई ।।
बिनु गुरु मुकति न पाईऐ भाई ।।

(आदि ग्रन्थ, म. ५, पृ. ८६४)

(गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि प्रभु ने यही प्रकट किया है कि हे भाई, गुरु के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती ।)

सतगुरु की दया-मेहर से आत्मा सूक्ष्म आकाश-मण्डल में जाकर निरंजन की ज्योति का दर्शन करती है, फिर ब्रह्म के लाल सूर्य को देखती है और अन्त में पारब्रह्म के शुद्ध आत्मिक मण्डल में पहुँच जाती है जहाँ पर पूर्णिमा के चन्द्र के समान, लेकिन इस चन्द्र से हज़ार गुना अधिक ज्योतिपूर्ण प्रकाश हो रहा है ।

सतिगुर मिलहु आपे प्रभु तारे ॥
ससि घरि सूरु दीपक गैणारे ॥
(आदि ग्रन्थ, म. १, पृ. १०४१)

[सतगुरु से मिलाप हो जाने पर परमात्मा स्वयं मुक्ति प्रदान करता है। (ब्रह्म का) सूर्य, (निरंजन की) दीपशिखा और सूक्ष्म मण्डल के तारे, सब चन्द्र के लोक (पारब्रह्म) में आकर विलीन हो जाते हैं।]

सतगुरु की भक्ति हमें माया, काल और महाकाल के देशों से परे, भ्रम और अन्धकार की सीमाओं से दूर, अपूर्ण चेतन देशों से ऊपर, पूर्ण चेतन देश-सचखण्ड में ले जाती है, जो कि हमारा स्थायी और असली घर है, जो प्रलय और महाप्रलय की पहुँच से परे है और जहाँ पर पूर्ण वास्तविकता तथा परम शुद्ध रूहानियत है। अपने प्यारे सतगुरु की गहरी भक्ति के फलस्वरूप हम निर्मल हो जाते हैं और ऊँचे रूहानी मण्डलों के अमृत का पान करने के लायक बन जाते हैं :

अंमृत रसु सतिगुरू चुआइआ ॥
दसवै दुआरि प्रगटु होइ आइआ ॥
तह अनहद सबद वजहि धुनि बाणी
सहजे सहजि समाई हे ॥ (मारू सोहले म. ४, पृ. १०६९)

(सतगुरु दसवें द्वार में प्रकट होकर अमृत की वर्षा करते हैं। वहाँ पर अनहद शब्द की मधुर धुन हो रही है और उसी धुन को पकड़ कर आत्मा सहज अवस्था में लीन

हो जाती है ।)

परमात्मा का परम श्रेष्ठ सच्चा नाम हमें मुक्ति और अनन्त आनन्द प्रदान करता है । इसमें कोई सन्देह नहीं है । पर यह नाम हमें पूरे गुरु के सिवाय और किसी से नहीं मिल सकता । गुरु की अटूट भक्ति से हमारा अहंकार और स्वार्थ दूर हो जाता है और हम कर्मों और माया की सीमा से परे शुद्ध रूहानी मण्डलों में, अपने गुरु के साथ जाने के लायक हो जाते हैं । गुरु का प्रदान किया हुआ उपदेश हमारे मन के सारे शक और भ्रम को दूर कर देता है । गुरु का सच्चा उपदेश परम चेतन नाम या शब्द है । इसलिये गुरु हमारे जीवन और प्राण हैं ।

नानक का जीउ पिंडु गुरू है
गुर मिलि तृपति अघाई ।।

(सूही असटपदीआं म. ४, पृ. ७५८)

(नानक का जीवन और प्राण गुरु हैं । गुरु से मिल कर वह तृप्त और संतुष्ट हो गया है ।)

गुरु हमें सच्चा सुख और आनन्द प्रदान करते हैं, वे हमें वास्तविक ज्ञान देते हैं तथा हमारे अन्दर सच्ची प्रीति और भक्ति का भाव जगा देते हैं । वे स्वयं दिव्य प्रेम और दया के स्वरूप हैं । गुरु के सूक्ष्म नूरी स्वरूप के दर्शन द्वारा जब शिष्य के अन्तर में सच्चा प्यार जाग उठता है तब वह आनन्द में फूला नहीं समाता और अपनी इस रूहानी आनन्द

की अवस्था में वह अपने और गुरु (जी कि विश्वात्मा के साथ एक हैं) के बीच का अन्तर भूलकर, उनसे अभिन्न हो जाता है, गुरु के उस स्वरूप में लीन हो जाने के बाद उस का प्यार विश्वव्यापी या सबके लिये समान हो जाता है। वह प्यार हक़ीक़त के लिये होता है, माया या भ्रमपूर्ण संसार के लिये नहीं :

मै गुर बिनु अवरु न कोई बेली
गुरु सतिगुर प्राण हमारे ॥

(वडहंस म. ४, पृ. ५७४)

(गुरु के सिवाय मेरा और कोई साथी व सहारा नहीं है। सतगुरु मेरे जीवन और प्राण हैं।)

सतगुरु, प्रेमी भक्तों के जीवन और प्राण हैं। शिष्य की प्रीति भक्ति और सेवा उसे गुरु से अभिन्न कर देती है और तब शिष्य को मुँह माँगी वस्तु प्रदान करने में सतगुरु को खुशी होती है :

गुरसिखां अंदरि सतिगुरू वरतै
जो सिखां नो लोचै सो गुर खुसी आवै ॥

(आदि ग्रन्थ, म. ४, पृ. ३१७)

(प्रेमी शिष्यों के अन्तर में सतगुरु स्वयं काम करते हैं। जो कुछ भी शिष्य चाहते हैं, उसे देने में गुरु को खुशी होती है।)

जिस प्रकार एक स्नेहमयी माता अपने बच्चों की देख-भाल करती है, उसी प्रकार गुरु अपने प्रेमी शिष्यों की देख-

भाल करते हैं और उन्हें सुख और खुशी देखकर प्रसन्न होते हैं। गुरु ही हमारे एक-मात्र रक्षक और आधार हैं। जो गुरु को याद नहीं करता वह ज़िन्दा नहीं है, वह रूहानी दृष्टि से मृतक समान है :

किस ही कोई कोइ मंञु निमाणी इकु तू ॥
किउ न मरीजै रोइ जा लगु चिति न आवही ॥
(सूही दी वार सलोक म. २, पृ. ७९१)

(और लोगों के तो कई मित्र हैं, पर मुझ दीन का तो बस एक तू ही सब कुछ है। अगर तेरी याद मन में नहीं रहती, तो उसके बिना मेरा रो-रो कर मर जाना ही अच्छा है।)

प्रेम के दो रूप हैं। एक तो है मिलाप के सुख और आनन्द का रूप जिसमें प्यारे सतगुरु के दर्शन व मिलाप के गहरे आत्मिक आनन्द का अनुभव होता है। दूसरा इस से उल्टा होता है, जिसमें प्यारे सतगुरु के विछोह में भक्त तड़पता है। इसे विरह कहते हैं। विरह का अर्थ है अपने प्रियतम के मिलाप के लिये निरन्तर तड़पते और तरसते रहना। हमें दुःख और विपत्ति के समय रोना-चिल्लाना नहीं चाहिये, बल्कि अपने भाग्य पर सन्तोष करना चाहिये। अगर रोना ही है, तो हमें केवल अपने सतगुरु की प्रीति और भक्ति में रोना चाहिये :

नानक रुना बाबा जाणीऐ जे रोवै लाइ पिआरो ॥
(वडहंस म. १, अलाहणीआ, पृ. ५७९)

(गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि रोना अच्छा है अगर गुरु के प्रेम में रोया जाये।)

लोग सांसारिक नुक्सान और दुनिया के पदार्थों के लिये रोते हैं। हम रोते हैं, जब हमारी सांसारिक इच्छाएँ पूरी नहीं होती। किसी को व्यापार में नुक्सान होता है तो वह रोता है। किसी के पास लड़की की शादी के लिये पैसे नहीं हैं और वह शोक में डूबा रहता है। कभी हमारे प्यारे सम्बन्धी संसार से चल बसते हैं और हम कई दिनों तक रोते व शोक मनाते हैं। जब हम किसी मुकद्दमें में हार जाते है या परीक्षा में फेल हो जाते हैं, तब हम अपनी तकदीर को कोसते और रोते हैं। लेकिन कोई बिरला ही परमात्मा के मिलाप के लिये रोता है। परमात्मा हर मनुष्य के अन्दर है, लेकिन वह छिपा हुआ है। वह केवल गुरु में प्रकट है।

गुरु दयालु हैं, रहमान हैं। वे दया-वश ही हमें अपनी शरण में ले लेते हैं तथा काल के जाल से बचाते हैं। हमें सतगुरु के हुक्म का पालन करना चाहिये तथा उनकी भक्ति करते हुए उस नाम का अभ्यास करना चाहिये जो कि उन्होंने इतनी कृपा करके हमें प्रदान किया है। गुरु जो भी करते हैं, हमारे भले के लिये करते हैं। वे जो कुछ भी कहें, हमें उसी के मुताबिक काम करना चाहिये। बस इसी में हमारी रक्षा और बचाव है। हमारी अपनी बुद्धि कमज़ोर और अपूर्ण है, हमें सतगुरु की परम चेतन बुद्धि के आसरे चलना

चाहिये।

हमें एक दिन इस संसार से चले जाना है, एक नियत समय तक के लिये ही हम यहाँ पर हैं। इसलिये इस थोड़े से समय को सतगुरु की सेवा और भक्ति में लगाकर हमें इसका पूरा फ़ायदा उठाना चाहिये। सतगुरु ही इस भव-सागर से पार करवा कर हमें अपने सच्चे घर, सचखण्ड में पहुँचा देते हैं। जो सतगुरु के हुक्म में नहीं चलते वे बड़े भाग्य-हीन हैं :

पूरे गुरु का हुक्मु न मंनै
ओहु मनमुखु अगिआन मुठा बिखु माइआ ॥
(आदि ग्रन्थ, म. ४, पृ. ३०३)

(जो पूरे गुरु का हुक्म नहीं मानता, वह अज्ञानी दुनियादार (मनमुख), माया के धोखे और विष के प्रभाव में आ गया है।)

जिसके गुरु नही हैं, वह माया के जाल में बँधा हुआ है और उसको न तो अपनी असलियत का ज्ञान होता है और न उस संसार का, जिसमें कि उसने जन्म लिया है। हक़ीक़त का ज्ञान तथा सच्चा आनन्द प्राप्त करने के लिये, सच्चे और शुद्ध प्रेम का अनुभव करने के लिये, हमें अपने समय के देहधारी सतगुरु की तलाश करके अपने तन-मन से उन की सेवा और भक्ति करना चाहिये। गुरु के प्रति जितना हमारा विश्वास और प्रेम होता है, उसी के अनुसार हमें फल मिलता है।

जेहा सतिगुरु करि जाणिआ, तेहो जेहा सुख होइ ।।
(सिरी रागु म. ३, पृ. ३०)

जिस प्रकार दूध में थोड़ी शक्कर डालने पर थोड़ा मिठास और अधिक शक्कर डालने पर अधिक मिठास आता है, उसी प्रकार सतगुरु के प्रति जितना अधिक हमारा प्रेम और विश्वास होता है, उसके फलस्वरूप हमें उतना ही अधिक आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होता है।

एक प्रेमी भक्त के लिये सतगुरु ही उसके सब-कुछ हैं। वे ही उसके देवी-देवता हैं, वे ही उसके परमात्मा हैं। वे उसके जीवन, प्राण और आत्मा हैं। उसने अपना सिर, अपना सर्वस्व, सब-कुछ सतगुरु के चरणों पर न्योछावर कर दिया है :

जन नानक की लज पाति गुरु है
सिरु बेचिओ सतिगुर आगे ।।
(आदि ग्रन्थ, म. ४, पृ. १७२)

(नानक की इज़्ज़त और लाज सब गुरु ही है। उसने सतगुरु के हाथों अपना सिर बेच दिया है।)

हमें परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिये कि वह हमें अपने गुरु के लिये ऐसी प्रीति और भक्ति प्रदान करे :

जन नानक संगति साध हरि मेलहु
हम साध जना पगराली ।।
(धनासरी म. ४, पृ. ६६८)

(गुरु नानक साहिब प्रार्थना करते हैं कि हे परमात्मा !

मुझे साध-सन्तों की संगति दो । मैं तो साध-सन्तों के चरणों की धूलि हूँ ।)

हमें सदा साध, सन्त तथा अपने सतगुरु की संगति और सत्संग की कामना करना चाहिये । परमात्मा करे कि हम दिन-रात अपने सतगुर की भक्ति और याद में लीन रहें :

गुरू गुरू गुरु करि मन मोर ।।
गुरू बिना मै नाही होर ।।
(गौंड म. ४, पृ. ८६४)

(ऐ मेरे मन ! तू निरन्तर गुरु-गुरु की ही रट लगाता रह । गुरु के सिवाय मेरा और कोई नहीं है ।)

‘GURMAT – 3’

(HINDI)